भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख का संशोधन करने के लिए प्रस्ताव

पर

202वीं रिपोर्ट

अक्तूबर, 2007

डा. न्यायमूर्ति ए. आर. लक्ष्मणन्
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

भा. वि. सं. भवन (दूसरा तल),
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
टेली. 91-11-23384475
फैक्स - 91-11-23383564

9 अक्तूबर, 2007

प्रिय श्री भारद्वाज जी

मुझे दहेज-मृत्यु संबंधी अपराधों के बारे में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख का संशोधन करने के लिए प्रस्ताव पर विधि आयोग की 202वीं रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बहुत हर्ष हो रहा है ।

वह प्रश्न, जिसकी इस रिपोर्ट में विधि आयोग द्वारा परीक्षा की गई है, यह है कि क्या भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख का दहेज-मृत्यु की विभीषिका की रोकथाम करने के लिए मृत्यु दंडादेश को अधिक कठोर दंड बनाने का उपबंध करने हेतु संशोधन किया जाना चाहिए ?

वे परिस्थितियां जिनमें इस विषय को आयोग द्वारा विचार किए जाने के लिए लिया गया था, रिपोर्ट के प्रारंभ में अध्याय-1 में कथित है । संक्षेप में बताते हुए, आयोग ने इस विषय पर **नत्थू** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** (2002 का आपराधिक जमानत आवेदन सं. 12466) वाले मामले में 31 जनवरी, 2003 के इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में विचार किया था जिसमें न्यायाधीश काट्जू (जो वह उस समय थे) ने कहा था कि "मेरी राय में दहेज-मृत्यु हत्या से अधिक खराब है किंतु आश्चर्यजनक रूप से इसके लिए कोई मृत्यु शास्ति नहीं है, जबकि हत्या के लिए मृत्यु शास्ति दी जा सकती है । मेरी राय में वह समय आ गया है जब विधि को संशोधित किया जाना चाहिए और दहेज-मृत्यु के मामलों में मृत्यु दंडादेश की अनुज्ञा दी जानी

चाहिए ।'' माननीय न्यायाधीश ने निदेशित किया कि आदेश की एक प्रति न्यायालय के महारजिस्टार द्वारा माननीय विधि मंत्री और माननीय गृह मंत्री को इस अनुरोध के साथ भेजी जानी चाहिए कि वे ऐसे संशोधन के लिए संसद् में किसी विधेयक को पुरःस्थापित करने के लिए या उसी आशय का केंद्रीय सरकार द्वारा कोई अध्यादेश लाने के लिए विचार कर सकें ।

इस विषय पर कार्य करते हुए, आयोग को उपलब्ध दो विकल्पों के बीच चयन करना पड़ा था । प्रथम यह था कि दहेज-मृत्यु के विषय की उसके सभी संबंधित पहलुओं की दृष्टि से परीक्षा की जाए जैसे दहेज प्रशासन की परिभाषा और विधिक विनियमन का प्रवर्तन और संबंधित अभिकरणों आदि का दायित्व आदि, और उसके द्वारा दहेज-मृत्यु पर नये सिरे से विधि को उसकी संपूर्णता में संहिताबद्ध करने का प्रयास किया जाए । दूसरा यह था कि वह अपने विचारण को उसको निर्दिष्ट किए गए मुद्दे तक अर्थात् क्या धारा 304-ख को मृत्यु दंडादेश का उपबंध करने के लिए संशोधित किया जाए, सीमित रखे । आयोग ने दूसरे विकल्प का चयन किया । इसके अतिरिक्त आयोग ने अपनी 91वीं रिपोर्ट में ''दहेज-मृत्यु और विधि सुधार'' के विषय की पहले ही परीक्षा की थी । इस विषय पर विद्यमान विधि का श्रेय उसमें की गई सिफारिशों को दिया जा सकता है । आयोग की यह राय थी कि दहेज-मृत्यु के मामलों के साथ जुड़ी हुई कतिपय शंकाओं और भ्रमों को स्पष्ट करने के लिए उस मुद्दे पर ही ध्यान केंद्रित करना आवश्यक होगा ।

आयोग ने विभिन्न न्यायिक प्रख्यापनों की दृष्टि से भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख की परीक्षा की और इस विषय के ठोस और साथ ही प्रक्रिया संबंधी पहलुओं के बारे में आलोचनात्मक रूप से विचार किया । आयोग ने यह पाया कि हत्या का अपराध वैसा ही नहीं है जैसा कि दहेज-मृत्यु का अपराध है । यद्यपि नववधू की मृत्यु दोनों मामलों में एक सामान्य तथ्य हो सकती है, किंतु पत्नी की मृत्यु के साथ पति का सीधा संबंध न होना हत्या के अपराध से दहेज-मृत्यु के अपराध को सुभिन्न करता है

और यह एक महत्वपूर्ण अपराध को कम करने वाला कारक है । इसके अतिरिक्त दहेज-मृत्यु के अपराध का उपधारणात्मक स्वरूप और आनुपातिकता का मुख्य सिद्धांत और साथ ही दंड संहिता की अंतर्निहित स्कीम दहेज-मृत्यु के मामले में मृत्यु दंडादेश के प्रस्तावित निर्धारण के विरुद्ध जाते हैं । यह बताना आवश्यक होगा कि जहां दहेज-मृत्यु का कोई मामला हत्या के अपराध की परिधि के भीतर भी आता है, वहां मृत्यु दंडादेश देना विधिक रूप से अनुज्ञेय है । निस्संदेह मृत्यु दंडादेश के अधिनिर्णय के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों का, विशेष रूप से 'विरले मामलों में से भी विरलतम' परमादेश का ऐसे मामलों में भी अनुपालन किया जा सकता है ।

इस प्रकार इस विषय पर सावधानीपूर्वक विचार करते हुए, आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मृत्यु दंडादेश का उपबंध करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख का संशोधन करने के लिए किसी अधिपत्र की आवश्यकता नहीं है । ऐसा होने पर किसी को इस बारे में आश्चर्य हो सकता है कि ऐसी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए फिर क्या आवश्यकता थी, जिसमें केवल पूर्ववत स्थिति बनाए रखने की और विधि में कोई परिवर्तन करने के लिए सुझाव न देने की सिफारिश की गई है । दूसरे शब्दों में स्वीकृति सूचक सिफारिश के बजाए नकारात्मक सिफारिश करने की क्या उपयोगिता है । आयोग ने इस पहलू पर विशेष रूप से, इस तथ्य का ध्यान रखते हुए विचार किया कि विद्यमान निर्देश किसी न्यायालय के आदेश का परिणाम है । तथापि आयोग को दहेज-मृत्यु के विषय से संबंधित काफी भ्रम और शंकाएं मिलीं । दहेज-मृत्यु का हत्या के अपराध के साथ बहुधा भ्रम होता है । ऐसे उदाहरण हो सकते हैं, जहां दोनों एकदूसरे के साथ सम्मिश्रित हों । इससे इन दोनों मामलों में दंडादेश के विषय में एकता के लिए मांग की जा सकती है । तथापि दोनों अपराध सुभिन्न हैं और स्वतंत्र अपराध है । आयोग ने अनुभव किया कि सूक्ष्म अर्थान्तरणों को, उनकी बेहतर समझ और समुचित समझ के लिए, स्पष्ट करने की आवश्यकता है । इससे उस संदिग्धता और संभ्रम को, जो दहेज-मृत्यु और साथ ही हत्या के विचार पर आच्छादित है, स्पष्ट

करने में सहायता मिलेगी । इस रिपोर्ट की उपयोगिता इस विषय पर उसकी सही समझ और समुचित समझ के लिए स्पष्टता लाने में है और इससे संबंधित प्राधिकारियों को दहेज-मृत्यु के मामलों में प्रभावी रूप से कार्यवाही करने में सहायता मिलेगी ।

भवदीय,

(डा. न्यायमूर्ति ए. आर. लक्ष्मणन)

डा. एच. आर. भारद्वाज,
माननीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
विधि और न्याय मंत्रालय,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली - 110001

विषय-सूची

अध्याय - I		प्रारंभ	2
	1.1	जांच का क्षेत्र	2
	1.2	इस विषय पर आयोग की पूर्वतर रिपोर्ट	2
	1.3	विद्यमान विधि की अपर्याप्तता	3
	1.4	आयोग को निर्देश	3
	1.5	आपराधिक मानववध और विभिन्न दंड	5
	1.6	विवाद्य प्रश्न	6
अध्याय - 2		दहेज-मृत्यु और विधि	7
	2.1	दहेज-एक सामाजिक बुराई	7
	2.2	दहेज को विनियमित करने के लिए विधि	9
	2.3	दहेज-मृत्यु का अपराध	10
	2.4	वर्तमान परिदृश्य	14
	2.5	दंड प्रक्रिया संहिता में वे धाराएं, जो मृत्यु दंड विहित करती हैं	15
	2.6	मृत्यु दंड - संहिता बनाने वालों का दृष्टिकोण	16
	2.7	केवल विरल से विरलतम मामलों में मृत्यु दंडादेश के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धांत	17
	2.8	ऐसे कुछ मामले जहां माननीय उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु दंड का आजीवन कारावास में लघुकरण कर दिया है	27
	2.9	आजीवन कारावास से संपूर्ण जीवन के लिए कारावास अभिप्रेत है	30

	2.10	दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 और धारा 304-ख	35
	2.11	आरोप का विरचन - क्या धारा 302 के अधीन है या धारा 304-ख के अधीन	36
	2.12	आकलन	45
अध्याय - 3		निष्कर्ष और सिफारिशें	47
	3.1	सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य	47
	3.2	विभिन्न प्रकार के दंड	49
	3.3	राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा सुझाव	50
	3.4	मृत्यु दंड	51
	3.5	भारतीय परिदृश्य	51
	3.6	दहेज मृत्यु बनाम हत्या	55
	3.7	दहेज मृत्यु मामलों में न्यायालयों की भूमिका	60
	3.8	समान तथ्यों से उद्भूत होने वाले विभिन्न अपराध	64
	3.9	दंड के निर्धारण में आनुपातिकता का सिद्धांत	69
	3.10	सिफारिश	76
	3.11	समावर्तन टिप्पण	76

***

अध्याय - 1

प्रारंभ

1.1 जांच का क्षेत्र :

वह प्रश्न जिसकी विधि आयोग इस रिपोर्ट में परीक्षा करने जा रहा है यह है कि क्या दहेज-मृत्यु से संबंधित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख को संशोधित किया जाना चाहिए जिससे कि दहेज-मृत्यु की विभीषिका को रोकने के क्रम में मृत्यु दंडादेश के अधिक कठोर दंड का उपबंध किया जा सके ।

1.2 इस विषय पर आयोग की पूर्वतर रिपोर्ट :

''दहेज-मृत्यु और विधि सुधार'' के प्रश्न को विधि आयोग द्वारा अपनी 91वीं रिपोर्ट में स्वतः उठाया गया था । इस विषय पर विद्यमान विधियों को इस क्षेत्र में आयोग के पूर्वतर प्रयासों की पराकाष्ठा के रूप में देखा जा सकता है । साधारणतया, जहां मृत्यु से संबंधित दहेज की किसी घटना में या उस विषय के किसी अपराध में तथ्य ऐसे हैं जो असंदिग्ध रूप से विधि में पहले से ही ज्ञात किसी अपराध के, जैसे दहेज-मृत्यु के मामले में हत्या, अवयवों की तुष्टि करते हैं और उसे साबित करते हैं, तो अपराधी को ऐसे मामले में दंड देने के लिए विधि का सहारा लिया जा सकता है । इस संबंध में विधि आयोग ने ऊपर निर्दिष्ट अपनी पूर्वतर रिपोर्ट में दहेज-मृत्यु संबंधी मामलों में दो बाधाओं के बारे में कहा था, अर्थात् प्रथमतः हो सकता है कि तथ्य किसी ज्ञात अपराध के लिए समुचित न हों और द्वितीयतः दहेज संबंधी मृत्यु के मामलों में स्थिति की विशिष्टताओं में प्रत्यक्ष रूप से फंसाने वाले तथ्यों का सबूत प्राप्त करने में कठिनाई हो । इन कठिनाइयों को सारवान और साथ ही प्रक्रिया संबंधी विधियों का संशोधन करके दूर करने की कोशिश की गई है । इस प्रकार दहेज-मृत्यु के नये अपराध का धारा 304-ख में, जिसे भारतीय दंड संहिता, 1860 में 19 नवंबर, 1986 से अंतःस्थापित किया गया है, सृजन किया गया है ।

यह धारा ऐसी अवधि के कारावास के दंड के लिए उपबंध करती है, जो सात वर्ष से कम का नहीं होगा और जो आजीवन कारावास तक का हो सकेगा । यह धारा कानूनी कल्पना को साकार रूप प्रदान करती है, जिसके द्वारा पति या संबंधित नातेदार के बारे में यह समझा जाता है कि उसने ऐसे मामले में दहेज-मृत्यु कारित की है, जहां उस धारा में विहित दशाएं विद्यमान हैं और तब उस धारा में प्रदर्शित उपधारणा को खंडित करने के लिए तर्कपूर्ण साक्ष्य द्वारा यह प्रदर्शित करने का भार कि उसने ऐसी दहेज-मृत्यु कारित नहीं की है, यथास्थिति पति पर या संबंधित नातेदार पर अंतरित हो जाता है । इसके अतिरिक्त धारा 113-क को 1983 में साक्ष्य अधिनियम में किसी विवाहित महिला द्वारा आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरण के बारे में, यदि उस धारा में विनिर्दिष्ट शर्तें पूरी होती हों तो उपधारणा का उपबंध करने के लिए अंतःस्थापित किया गया था ।

1.3 विद्यमान विधि की अपर्याप्तता :

पूर्वोक्त विधिक संशोधनों के होते हुए भी दहेज-मृत्यु की घटनाओं में कमी होने के कोई महत्वपूर्ण चिह्न दिखाई नहीं पड़ रहे हैं । इस स्थिति ने विधि में आवश्यक भय उत्पन्न करने के लिए दहेज-मृत्यु के अपराध के लिए मृत्यु दंड/मृत्यु दंडादेश की मांग को जन्म दिया है । दूसरी तरफ अन्य व्यक्ति हैं जो दहेज संबंधी उपबंधों के दुरुपयोग के बारे में शिकायत करते हैं और उनके निराकरण के लिए बहस करते हैं । इन विरोधी विचारों के बारे में कुछ कहने के पूर्व यह बताना समीचीन होगा कि यह विषय आयोग के समक्ष कैसे आया ।

1.4 आयोग को निर्देश :

यह विषय आयोग के विचारार्थ **नत्थू** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में 2002 के आपराधिक जमानत आवेदन सं. 12466 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 31 जनवरी, 2003 के आदेश के अनुसरण में आया है । इस मामले में, यह कहा गया था कि नत्थू के पुत्र प्रितिपाल का उर्मिला देवी से उसकी मृत्यु के लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व विवाह

हुआ था । प्रितिपाल और उसका पिता नत्थू विवाह में दिए गए दहेज से संतुष्ट नहीं थे और दहेज में मोटरसाइकिल की मांग कर रहे थे, जो कि उर्मिला का पिता सोमपाल देने में असमर्थ था । उन्होंने उर्मिला को अपनें माता-पिता के घर मोटरसाइकिल दिए जाने तक जाने की अनुज्ञा नहीं दी और जब उर्मिला का भाई रामवीर उसको लेने गया तो उन्होंने उसको मारने के लिए धमकाया और उससे कहा कि उर्मिला मोटरसाइकिल दिए जाने पर भेजी जाएगी । अगले दिन यह सूचना प्राप्त हुई कि उन्होंने दूसरों के साथ मिलकर उर्मिला देवी को मार दिया है । शव परीक्षा रिपोर्ट ने थायराइड की कोमल हड्डी के नीचे गर्दन पर लगातार गांठ बांधने के चिह्न और साथ ही पांच लगातार चिह्न दर्शित किए । उनमें से एक ठुड्डी के ठीक नीचे गर्दन पर था और दूसरे शरीर के अन्य भागों पर थे । ये मृत्यु के पूर्व की क्षतियां थीं और प्रत्यक्ष दृष्टया दर्शित करती थीं उर्मिला देवी को गला घोंटने के पूर्व पीटा गया था । शवपरीक्षा रिपोर्ट में डॉक्टर ने यह भी उल्लिखित किया था कि उर्मिला देवी की मृत्यु मृत्यु के पूर्व गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध के कारण हुई थी । प्रथम दृष्टया यह उर्मिला देवी की नृसंश हत्या का मामला मालूम होता है । ऊपर निर्दिष्ट जमानत के आवेदन के बारे में कार्रवाई करते हुए माननीय न्यायाधीश श्री एम. काट्जू ने, जो वह उस समय थे, अन्य बातों के साथ-साथ कहा कि "मेरी राय में दहेज-मृत्यु हत्या से अधिक खराब है किंतु आश्चर्यजनक रूप से इसके लिए कोई मृत्यु दंड नहीं है जबकि हत्या के लिए मृत्यु दंड दिया जा सकता है ।" मेरी राय में वह समय आ गया है जब विधि को संशोधित किया जाना चाहिए और मृत्यु दंडादेश की दहेज-मृत्यु के मामलों में भी अनुज्ञा दी जानी चाहिए । माननीय न्यायाधीश ने निदेशित किया कि :-

> "इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के महारजिस्टार द्वारा भारत के माननीय विधि मंत्री और भारत के माननीय गृहमंत्री को इस अनुरोध के साथ भेजी जाए कि वे ऊपर सुझाव दिए गए रूप में ऐसे संशोधन के लिए संसद् में एक विधेयक पुरःस्थापित करने के लिए या उस आशय का केंद्रीय सरकार द्वारा अध्यादेश लाने के लिए विचार कर सकें ।"

1.5 आपराधिक मानववध और विभिन्न दंड :

सभी मानववध मृत्यु दंड का समुचित आधार बनाने वाली हत्याएं नहीं हैं । ऐसा मानव वध हो सकता है, जो हत्या की कोटि में न आता हो, उतावलेपन और उपेक्षा से मृत्यु कारित करने वाला हो, और गंभीर उपहति कारित करने के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई हो । विभिन्न दंडों/दंडादेशों का विभिन्न प्रकार के मानववधों के लिए, किसी प्रस्तुत मामले में किसी अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर निर्भर करते हुए, उपबंध किया गया है । दंडशास्त्र के सिद्धांत मांग करते हैं कि दंड सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि सभी सुसंगत दृष्टिकोणों से अपराध की संपूर्ण उलझनों का सम्यक् ध्यान रखते हुए उसकी गंभीरता के अनुपात में, व्यावहारिक और पर्याप्त रूप से भयोत्पादक होना चाहिए । अतः दहेज-मृत्यु के लिए दंड की पर्याप्तता या अन्यथा से संबंधित प्रश्न पर इस पृष्ठभूमि में विचार किया जाना होगा । दहेज-मृत्यु के अपराध के लिए दंड कारावास है जो सात वर्ष से कम का नहीं होगा किंतु जो आजीवन कारावास तक का हो सकेगा । अब प्रश्न यह है कि क्या मृत्यु दंड उसमें जोड़ा जाना चाहिए क्योंकि दहेज-मृत्यु निश्चित रूप से अत्यधिक विभत्स है । यदि हम ध्यानपूर्वक धारा 304-ख के उपबंध की परीक्षा करते हैं तो हम देखेंगे कि उसके अधीन अपराध एक तरह से विधिक कल्पना है जिसके द्वारा दहेज-मृत्यु के अपराध को किया गया समझा जाता यदि कतिपय शर्तें किसी प्रस्तुत मामले में पूरी होती हैं । ये शर्तें संख्या में चार हैं, अर्थात् :-

(i) किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है,

(ii) किसी स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्षों के भीतर हो जाती है,

(iii) स्त्री की मृत्यु के कुछ पूर्व उसके ऊपर उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा क्रूरता की जाती है या उसे तंग किया जाता है,

(iv) ऐसी क्रूरता या तंग करना दहेज की किसी मांग के लिए किया जाता है या उसके संबंध में है ।

1.6 **विवाद्य प्रश्न :**

यदि ऊपर कथित सभी चारों शर्तें किसी प्रस्तुत मामले में विद्यमान है तो पति या संबंधी नातेदार के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने उसकी मृत्यु कारित की है और ऐसी मृत्यु दहेज-मृत्यु कही जाएगी । पारंपरिक आपराधिक विधि संबंधी उक्ति कि किसी अपराधी के बारे में तब तक निर्दोष होने की उपधारणा की जाती है जब तक कि वह उस अपराध का जिससे उसे आरोपित किया गया है, दोषी साबित नहीं हो जाता है, धारा 304-ख के उपबंधों में दर्शित कानूनी कल्पना के कारण लागू नहीं है जिसके द्वारा उसके बारे में यह समझा जाता है कि उसने मृत्यु कारित की है और उससे अन्यथा साबित करने का भार उस पर अंतरित हो जाता है । वहां जहां यह साक्ष्य है कि किसी अभियुक्त ने हत्या के अपराध को परिभाषित करने वाली धारा 300 के निबंधनानुसार स्त्री की हत्या की है, तो उसे हत्या का अपराध करने से आरोपित किया जाएगा और तद्नुसार वह उसके विरुद्ध कार्यवाही किए जाने का दायी होगा । यदि धारा 304-ख की शर्तें या उस मामले के लिए दंड संहिता की किसी अन्य धारा की शर्तें ऐसे किसी मामले में उपस्थित है तो अभियुक्त को उस अपराध करने से भी आरोपित किया जाएगा । किसी अन्य अपराध से संबंधित ऐसी शर्तों की उपस्थिति उस मामले को हत्या के अपराध के बारे में धारा 300 की परिधि से बाहर नहीं ले जाएगी । पूर्वोक्त की दृष्टि से, आयोग आगे आने वाले अध्यायों में इस बारे में विचार करेगा कि क्या धारा 304-ख से मृत्यु दंड को संलग्न करने के लिए इस कारण से कोई औचित्य है कि दहेज-मृत्यु का अपराध अत्यधिक घृणित है और समाज की चेतना को सदमा पहुंचाता है ।

***

अध्याय - 2

दहेज-मृत्यु और विधि

2.1 **दहेज - एक सामाजिक बुराई :**

2.1.1 वर्षों में दहेज एक ऐसी सामाजिक बुराई के रूप में पनप गया है जिसने गहरी जड़ें जमा ली हैं । यह हमारे समाज के विनाश का कारण बन गया है । यह स्त्रियों पर अत्याचार का और युवा लड़कियों की दुर्भाग्यवश मृत्यु का कारण बन गया है । यह जघन्य, नृशंस और बर्बर अपराध है । ***कमलेश पंजियार बनाम बिहार राज्य,*** (2005) 2 एस. सी. सी. 388 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा था :-

> ''विवाह स्वर्ग में बनते हैं यह कहावत है । एक नववधू अपने पीछे मधुर स्मृतियों को छोड़ते हुए अपने माता-पिता के घर को वैवाहिक घर के लिए छोड़ देती है, इस आशय के साथ कि वह अपने पति के घर में एक नया प्यार भरा संसार देखेगी । वह अपने पीछे न केवल अपनी स्मृतियों को छोड़ती है किंतु अपना कुलनाम, गोत्र और कौमार्य भी छोड़ देती है । वह केवल कानूनन पुत्री होने की आशा नहीं करती किंतु वह वास्तव में पुत्री होने की आशा करती है । दुःख है कि दहेज के लिए नवविवाहित लड़कियों को तंग करने वाले मामलों की संख्या में भयानक वृद्धि होने से ऐसे स्वप्न ध्वस्त हो गए हैं । ससुराल वालों को आतंक फैलाने के लिए, जो वैवाहिक घर को नष्ट कर देता है, विधि से बाहर बागी के रूप में विशेषित किया जाता है । आतंकवादी दहेज है और यह प्रत्येक संभव दिशा में अपने डंक फैला रहा है । ''

2.1.2. दहेज की मांग से संबंधित मृत्यु के अपराधी सदैव यह धारणा बनाने का प्रयास करते हैं कि यह आत्महत्या या दुर्घटना मृत्यु है किंतु वह हमेशा वधू होती है जो खाना पकाते समय या गृह कार्य करते समय दुर्घटनाग्रस्त होती है ।

2.1.3 सोनीदेवराभाई बाबू भाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य (1991) 4 एस.सी.सी. 298 में उच्चतम न्यायालय ने कहा था :-

''भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख और संषर्गी उपबंध दहेज की सामाजिक बुराई के उन्मूलन के लिए तात्पर्यित हैं, जो भारतीय समाज के विनाश का कारण रही है और महिलाओं की मुक्ति और महिलाओं के उदारीकरण आंदोलन के बावजूद लगातार बढ़ती जा रही है । हमारे समाज में इस सर्वव्यापी त्रासदी के शिक्षा तथा कैरियर के लिए लड़कों और लड़कियों के साथ समान व्यवहार और उनके लिए समान अवसर के बावजूद, केवल कुछ अपवाद है । समाज विवाह के प्रयोजन के लिए उनके बीच सदैव से भेद करता रहा है और यही सुभिन्नता है जो दहेज प्रथा को लगातार बनाए रखे हुए है । यद्यपि इस सामाजिक बुराई के उन्मूलन के लिए समाज द्वारा स्वयं ही प्रभावी कदम उठाए जा सकते हैं और समुदाय की सामाजिक अनुशास्ति अधिक भयपरतिकारी हो सकती है तथापि उसका प्रतिषेध और दंड के रूप में विधिक अनुशास्तियां उस दिशा में कुछ उपाय हैं । दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1956 को इस प्रयोजन के लिए अधिनियमित किया गया था । संसद् की संयुक्त समिति की रिपोर्ट ने इस सामाजिक बुराई के संबंध में कार्यवाही करने में विधान की भूमिका को दर्शित करने के लिए जवाहरलाल नेहरू के कथनों को यथा निम्नलिखित उद्धृत किया था :-

''विधान स्वयं सामान्य रूप से इस गहरी सामाजिक समस्या को नहीं सुलझा सकता है । इसके लिए अन्य मार्गों से भी उपाय करने होंगे किंतु विधान आवश्यक और अनिवार्य है जिससे कि वह उस पर प्रहार कर सके और ऐसे शिक्षात्मक कारकों और साथ ही विधिक अनुशास्तियों को उसके पीछे ला सके जो इस मत को निश्चित आकार दे सके ।''

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 का अधिनियमन उसके मूल रूप में अपर्याप्त

पाया गया था । अनुभव दर्शित करता है कि दहेज की मांग और उसको मांगने का तरीका एक ही परिणाम प्राप्त करने के लिए भिन्न रूप लेते हैं और विभिन्न अप्रत्यक्ष और व्यवहार कुशल पद्धतियों का, अपराध का कोई साक्ष्य छोड़ने से बचने के लिए, उपयोग किया जाता है । समान रूप से दहेज की मांग की पूर्ति न होने के परिणाम अभागी वधू के लिए विभिन्न रूप लेते हैं जिससे कि दहेज की मांग और वधू पर उसके प्रतिकूल रूप से पड़ने वाले प्रभावों के बीच किसी आकस्मिक संबंध से बचा जा सके । इस अनुभव ने इस बुराई से लड़ने में लगातार किए जाने वाले प्रयासों में कई अन्य विधायी उपायों का भी मार्ग दर्शित किया है ।'' (पृष्ठ 300-301 पर पैरा 5 और पैरा 6)

2.2 दहेज को विनियमित करने के लिए विधि :

2.2.1 समय-समय पर सरकार स्त्रियों को संरक्षण देने के लिए और उन व्यक्तियों को दंडित करने के लिए जो उन पर अत्याचार करते हैं, विधान लाई है । 1961 में दहेज प्रतिषेध अधिनियम (1961 का 28) दहेज लेने और देने का प्रतिषेध करने के लिए पारित किया गया था । दंड विधि (दूसरा संशोधन) अधिनियम, 1983 (1983 का अधिनियम 46) द्वारा दंड संहिता की धारा 498-क के साथ अध्याय 20क को पुरःस्थापित किया गया था, जिसने क्रूरता के नये अपराध का सृजन किया जो पति और नातेदारों के लिए, यदि वे संपत्ति के लिए किसी अविधिपूर्ण मांग को पूरा करने के लिए स्त्री को प्रपीड़ित करने की दृष्टि से उसे तंग करते हैं, दंड का उपबंध करता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 का भी किसी स्त्री की, आत्महत्या या मृत्यु की दशा में, जो उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हो, शवपरीक्षा सुनिश्चित करने के लिए संशोधन किया गया था । धारा 130क को पति या उसके नातेदार के विरुद्ध, यदि पत्नी अपने विवाह की तारीख से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या करती है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 498-क के अधीन परिभाषित रूप में क्रूरता की उपधारणा उत्पन करते हुए साक्ष्य अधिनियम, 1872 में पुरःस्थापित किया गया है ।

2.2.2 ये उपबंध दहेज की विभीषिका से दृढ़तापूर्वक निपटने के लिए और उन अपराधों पर नियंत्रण करने के लिए सरकार की चिंता को दर्शित करते हैं । सरकार ने पुनः दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1984 में संपूर्ण रूप से परिवर्तन किए हैं । एक नया अपराध ''दहेज-मृत्यु'' के नाम से दंड संहिता में धारा 304-ख को पुरःस्थापित करके अंतःस्थापित किया गया है । धारा 304 को 19 नवंबर, 1986 से प्रभावी किया गया है । संबंधित साधारण कानूनी नियम यथा निम्नलिखित है :-

> ''सा.का.नि. 1185 (अ) - (नई दिल्ली, 5 नवंबर, 1986) केंद्रीय सरकार दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 (1986 का 46) की धारा 1 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए 19 नवंबर, 1986 को उस तारीख के रूप में नियत करती है जिसको अधिनियम प्रवृत्त होगा ।''

2.3 दहेज-मृत्यु का अपराध :

2.3.1 धारा 304-ख - दंड प्रक्रिया संहिता कहती है :-

> (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया गया था वहां ऐसी मृत्यु को ''दहेज-मृत्यु'' कहा जाएगा, और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा ।
>
> **स्पष्टीकरण** - इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए ''दहेज'' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।

(2) जो कोई दहेज-मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।

2.3.2 **शांति** बनाम **हरियाणा राज्य,** 1991 (1) एस. सी. सी. 371 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि दहेज शब्द को भारतीय दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । तथापि उसे दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 में ''कोई ऐसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति..... जो विवाह के समय या उसके पूर्व या पश्चात् -

''(क) विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह के दूसरे पक्षकार को ; या

(ख) विवाह के किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या किसी अन्य व्यक्ति को उक्त पक्षकारों के विवाह के प्रति फलस्वरूप या तो प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः दी गई है या दी जाने के लिए करार की गई है ।''

2.3.3 ''दहेज'' शब्द की पूर्वोक्त परिभाषा की दृष्टि से कोई संपत्ति या महत्वपूर्ण प्रतिभूति विवाह में या उसके पूर्व या उसके पश्चात् और उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दी जानी चाहिए या देने के लिए करार होना चाहिए । अतः संपत्ति या महत्वपूर्ण प्रतिभूति के देने या लेने का पक्षकारों के विवाह के साथ कुछ संबंध होना चाहिए और पक्षकारों के विवाह के साथ संपत्ति या महत्वपूर्ण प्रतिभूति के देने या लेने के बीच परस्पर संबंध अनिवार्य है । दांडिक उपबंध होने के कारण इसका कठोर रूप से अर्थान्वयन किया जाना है । दहेज भारत में भलीभांति ज्ञात एक सामाजिक रूढ़ि या परिपाटी है । यह कानून के निर्वचन का सुनिश्चित सिद्धांत है कि यदि कोई अधिनियम किसी विशिष्ट व्यवसाय, व्यापार या संव्यवहार के प्रति निर्देश से पारित किया जाता है और उसमें ऐसे शब्दों का उपयोग किया जाता है जो उस व्यवसाय, व्यापार या संव्यवहार से सुपरिचित प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात हैं या वह उनके विशिष्ट अर्थ को जानता या समझता है, तब उन

शब्दों का ऐसा विशिष्ट अर्थ रखने वाले के रूप में अर्थान्वयन किया जाना होता है । (भारत संघ बनाम **गार्वेयर नायलंस लिमिटेड,** ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3509 और **केमिकल्स एंड फाइवर्स ऑफ इंडिया** बनाम **भारत संघ,** ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 558 देखें) किसी वित्तीय कठोरता के कारण या किसी अत्यावश्यक घरेलू खर्च को पूरा करने के लिए या खाद का क्रय करने के लिए धन की मांग को दहेज की मांग नहीं कहा जा सकता क्योंकि उक्त शब्द सामान्य रूप में समझे जाते हैं । (**अप्पा साहब और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य,** ए. आई. आर. 2007, एस. सी. 763 को पृष्ठ 767 पर देखें)

2.3.4 दहेज से संबंधित तीन अवसर होते हैं । एक विवाह के पूर्व होता है, दूसरा विवाह के समय और तीसरा विवाह के पश्चात् ''किसी भी समय'' । तीसरा अवसर ऐसा है जो कभी समाप्त न होने वाली अवधि मालूम हो सकती है । किंतु महत्वपूर्ण शब्द ''उक्त पक्षकारों के विवाह के संबंध में'' हैं । इसका अभिप्राय यह है कि उक्त तीन प्रक्रमों में से किसी पर संपत्ति या महत्वपूर्ण प्रतिभूति का देना या देने के लिए करार करना पक्षकारों के विवाह के संबंध में होना चाहिए । पति-पत्नी के बीच धन का संदाय करने या संपत्ति देने के बहुत से अन्य उदाहरण हो सकते हैं । उदाहरणार्थ किसी बच्चे के जन्म के संबंध में या अन्य समारोहों पर कुछ रूढ़िगत संदाय विभिन्न समाजों में प्रचलित है । ऐसे संदायों को ''दहेज'' की परिधि के भीतर नहीं माना जाता है । अतः धारा 304-ख में वर्णित दहेज ऐसी कोई संपत्ति या महत्वपूर्ण प्रतिभूति होना चाहिए जो विवाह के संबंध में दी गई हो या जिसको देने के लिए करार किया गया हो । (**सतवीर सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य,** ए. आई. आर. 2001, एस. सी. 2828 पृष्ठ 2834 पर देखें)

2.3.5 यदि धारा 304-ख का आह्वान किया जाना है तो यह पर्याप्त नहीं है कि स्त्री को किसी समय दहेज की मांग के साथ तंग किया गया था या उसे साथ क्रूरता कारित की गई थी । किंतु वह ''उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व'' होना चाहिए । उक्त उक्ति, निःसंदेह, एक लचीली अभिव्यक्ति है और वह उस अवधि के प्रति निर्देश कर सकती है जो या तो उसकी मृत्यु के ठीक पूर्व कुछ दिनों के भीतर या चाहे उसके कुछ सप्ताह पूर्व हो । किंतु

उसकी मृत्यु की निकटता उस अभिव्यक्ति द्वारा दर्शित केंद्र बिंदु है । ''उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व'' शब्दों का उपयोग करके समय की ऐसी परिधि का उपबंध करने में विधायी उद्देश्य यह है कि इस बात पर जोर दिया जाए कि उसकी मृत्यु, सभी संभवताओं में, ऐसी क्रूरता या तंग किए जाने का परिणाम रही है । दूसरे शब्दों में उसकी मृत्यु और उसको तंग किए जाने, उसके प्रति क्रूरता किए जाने के बीच सुस्पष्ट संबंध होना चाहिए । (**सतवीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**, ऊपर उद्धृत देखिए)

2.3.6 **पवन कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य**, 1998 (3) एस. सी. सी. 309 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 304-ख को आकर्षित करने के लिए आवश्यक बातें अधिकथित की हैं :

(1) किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा होती है ;

(2) वह विवाह के सात वर्षों के भीतर होनी चाहिए ;

(3) यह भी दर्शित किया जाना चाहिए कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उस पर पति या पति के किसी नातेदार द्वारा क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था ;

(4) ऐसा तंग किया जाना या क्रूरता दहेज के लिए मांग से संबंधित होनी चाहिए ।

2.3.7 भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दंडनीय दहेज-मृत्यु का अपराध नया अपराध है जिसे भारतीय दंड संहिता में 19 नवंबर, 1986 से अंतःस्थापित किया गया है, जब 1986 का अधिनियम 43 प्रवृत्त हुआ था । धारा 304-ख के अधीन अपराध कम से कम सात वर्ष के दंडादेश से, जो आजीवन कारावास तक का हो सकेगा, दंडनीय है और जो सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है । दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम में किए गए तत्संबंधी संशोधन अपराध के विचारण और सबूत से संबंधित है । धारा 304-

ख मूल उपबंध है जो नये अपराध का सृजन करता है । (**सोनी देवराज भाई बाबू भाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य,** (1991) 4 एस.सी.सी. 298 पृष्ठ 303 पर देखें)

2.4 **वर्तमान परिदृश्य :**

2.4.1 दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 के अधिनियमन के पश्चात् अब 21 वर्ष बीत गए हैं । अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि :

(1) क्या सरकार 'दहेज-मृत्यु' की विभीषिका को कम करने में सफल हुई है ? यदि नहीं, तो

(2) क्या दहेज-मृत्यु के अपराध के लिए मृत्यु दंड का उपबंध किया जाना चाहिए।

2.4.2 प्रथम प्रश्न का उत्तर नहीं में है । दहेज-मृत्यु की दुखःपूर्ण घटनाएं अभी भी हो रही हैं । दहेज-मृत्यु से संबंधित मामलों की प्रत्येक वर्ष बड़ी संख्या में रिपोर्ट की जाती है, जो कि वास्तव में शर्म का विषय और गहरी चिंता का कारण है ।

2.4.3 राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, ईष्ट ब्लॉक -7, आर. के. पुरम, नई दिल्ली ने ''भारत में अपराध - 2005'' (तारीख 31 जुलाई, 2006 - पृष्ठ 9) में ''2005 की अपराध घड़ी'' प्रकाशित की है जिसमें रिपोर्ट किया गया है कि दहेज-मृत्यु का एक मामला भारत में प्रत्येक 77 मिनट में होता है । आगे पृष्ठ 242 पर सारणी - 5 (क) दर्शित करती है ''2001 - 2005 के दौरान स्त्रियों के विरुद्ध अपराध शीर्षवार घटनाएं और 2004 से 2005 में प्रतिशत भिन्नता'' ; क्रम संख्या 3 इस प्रकार है :

क्र.सं.	अपराध शीर्ष	2001	2002	2003	2004	2005	2004 से 2005 में प्रतिशत भिन्नता
3.	दहेज-मृत्यु (302/304-ख दंड प्रक्रिया संहिता)	6851	6822	6208	7026	6787	-3.4

2.4.4 समाज में दहेज की विभिन्न उलझने हैं । दहेज का हमारे देश में बालिका भ्रूण पर भी

प्रभाव पड़ता है । व्यक्ति बच्चे के रूप में एक लड़की को सामाजिक स्थिति पर विचार करते हुए कि एक दिन उन्हें दहेज देना होगा, नहीं चाहते हैं । दूसरी तरफ यदि बच्चे के रूप में लड़के का जन्म होता है तो उन्हें दहेज मिलता है । दुर्भाग्य से भारतीय परिदृश्य में एक लड़की को उसके कुटुंब के लिए दायित्व के रूप में देखा जाता है । इस समय की आवश्यकता यह है कि दहेज की इस विभीषिका से सर्वोत्तम संभव रूप में लड़ा जाए । किंतु एक बात बिना कहे ही है कि केवल अधिनियम का संशोधन करके और उसे अधिक कठोर बनाकर इस स्थिति में सहायता नहीं की जा सकती है जब तक कि विधि का प्रवर्तन करने वाले अभिकरण अपना कर्तव्य ध्यानपूर्वक और जिम्मेदारी से न करें । विधि बनाने वाले अभिकरण के भीतर यह वाद-विवाद है कि क्या दहेज-मृत्यु कारित करने के लिए अपराधियों को मृत्यु दंड देने का प्रारंभ करने से न्याय के उद्देश्य पूरा होंगे और क्या यह भयपरक साबित होगा । आगे जाने से पूर्व यह वर्णित करना समुचित होगा कि भारत न केवल राम और बुद्ध का देश है, यह बाल्मीकि और अंगुलिमार का भी देश है जहां भयानक अपराधी अपने अंधकार पूर्ण गत जीवन को छोड़कर सुधर गए हैं । इसके अतिरिक्त दूसरी कहावत यह भी है कि प्रत्येक साधू का पिछला जीवन होता है और प्रत्येक अपराधी का भविष्य होता है । यहां यह कहा जाता है कि अधिकांश देशों में मृत्यु दंड को समाप्त कर दिया गया है । भारत ने इस विषय में बहुत ही संतुलित दृष्टिकोण अपनाया है । यहां पर कानूनी पुस्तक में मृत्यु दंड है किंतु उसका उपयोग विरले ही किया जाता है । भारत में मृत्यु दंड का आजीवन कारावास में सूक्ष्म रूप से परिवर्तन कर दिया गया है और मृत्यु दंड विरले मामलों से विरलतम में ही दिया जाता है । इस प्रकार यदि मृत्यु दंड का उपबंध किया जाता है तो उसे सामान्य रूप में नहीं दिया जा सकता किंतु विरले मामलों से विरलतम की उक्ति फिर भी लागू होगी ।

दंड प्रक्रिया संहिता में वे धाराएं, जो मृत्यु दंड विहित करती हैं

2.5 भारतीय दंड संहिता में निम्नलिखित धाराएं हैं जो मृत्यु दंड विहित करती है :-

(1) धारा 121 - भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करना या युद्ध करने का प्रयत्न करना या युद्ध करने का दुष्प्रेरण करना ;

(2) धारा 132 - विद्रोह का दुष्प्रेरण, यदि उसके परिणामस्वरूप विद्रोह किया जाए–

(3) धारा 194 - किसी व्यक्ति को मृत्यु दंड के लिए दोषसिद्ध कराने के आशय से मिथ्या साक्ष्य देना या गढ़ना, परंत यह तब जब कि निर्दोष व्यक्ति उसके द्वारा दोषसिद्ध किया जाए और उसे फांसी दे दी जाए ।

(4) धारा 302 - हत्या ।

(5) धारा 303 – आजीवन कारावास के दंडादेश के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा हत्या (यह धारा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विखंडित कर दी गई है क्योंकि इसको भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करने वाली अभिनिर्धारित किया गया है)

(6) धारा 305- किसी बालक या उन्मत या विपर्यस्त चित्त व्यक्ति या किसी जड़ व्यक्ति या मत्तता की अवस्था वाले व्यक्ति द्वारा की गई आत्महत्या का दुष्प्रेरण ।

(7) धारा 307 - आजीवन सिद्धदोष द्वारा हत्या करने का प्रयत्न, यदि उपहति कारित होती है ।

(8) धारा 364-क फिरौती, आदि के लिए व्यपहरण

(9) धारा 396 - डकैती में हत्या ।

2.6 मृत्यु दंड : संहिता बनाने वालों का दृष्टिकोण

संहिता के लेखकों ने कहा कि :-

"हमें यह विश्वास है कि इसको बहुत कम दिया जाना चाहिए और हम प्रस्ताव करते हैं कि इसे केवल उन मामलों में दिया जाना चाहिए जहां हत्या या राज्य के विरुद्ध उच्चतम अपराध किया गया है .....बड़ी संख्या में मानवता के लिए जीवन से अधिक प्रिय कुछ नहीं है और हमारी यह राय है कि लुटेरों, बलात्संग करने वालों और अंग विच्छेद करने वालों को हत्या करने वालों के साथ उसी धरातल पर रखना ऐसी व्यवस्था है जो जीवन की सुरक्षा को कम करती है ..... ये अपराध करीब-करीब हमेशा ऐसी परिस्थितियों में किए जाते हैं जब अपराधी के पास अपने दोष में हत्या को भी जोड़ने की शक्ति होती है ..... क्योंकि उसके पास करीब-करीब हमेशा हत्या करने की शक्ति होती है, उसके पास बहुधा हत्या करने का जोरदार हेतु होता है क्योंकि हत्या द्वारा वह बहुधा आशा करता है कि वह उस अपराध के, जो वह पहले ही कर चुका है, एकमात्र साक्षी को हटा देगा । यदि उस अपराध का दंड, जो उसने पहले ही किया है, ठीक - ठीक हत्या के लिए दंड के समान होगा, तो उसको निर्बंधित करने वाला कोई हेतु नहीं होगा । कोई विधि जो बलात्संग और लूट के लिए कारावास की सजा देती है और हत्या के लिए फांसी देती है, बलात्संग करने वालों और लुटेरों के लिए उन व्यक्तियों की जिंदगी को, जिनको उन्होंने क्षति पहुंचाई है, छोड़ने के लिए गहरा प्रलोभन रखती है । कोई विधि जो बलात्संग और लूट के लिए फांसी देती है और जो हत्या के लिए भी फांसी देती है, यदि उसे कठोर रूप से प्रभावी किया जाए तो, निस्संदेह बलात्संग और लूट से व्यक्ति को भयभीत करने के लिए जोरदार हेतु रखती है किंतु जैसे ही किसी व्यक्ति ने बलात्संग किया है या लूटा है, तो उसके लिए अपने अपराध के साथ हत्या करने का जोरदार हेतु होता है ।" (प्रारूप दंड संहिता, नोट ए, पृष्ठ 93 देखें)

2.7 केवल विरल से विरलतम मामलों में मृत्यु दंडादेश के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धांत :

2.7.1 **लहना बनाम हरियाणा,** 2002 (3) एस.सी.सी. 76 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने उस निर्णयज विधि के बारे में चर्चा की है, जिसके द्वारा मृत्यु दंड देने के लिए मार्ग-दर्शक सिद्धांत अधिकथित किए गए थे । माननीय न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता में आजीवन कारावास की तरफ निश्चित झुकाव है ।

2.7.2 उच्चतम न्यायालय ने कहा कि :

> ''दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 हत्या के लिए शास्ति के रूप में मृत्यु या आजीवन कारावास को विहित करती है । ऐसा करते हुए संहिता न्यायालय को उसको लागू करने के बारे में अनुदेश देती है । वे परिवर्तन जो संहिता ने पिछले तीन दशकों में किए हैं स्पष्ट रूप से दर्शित करते हैं कि संसद् ने समकालीन अपराध विज्ञान संबंधी विचारों का और आंदोलन का ध्यान रखा है । यह समझ लेना कठिन नहीं है कि संहिता में आजीवन कारावास के प्रति निश्चित झुकाव है । ''मृत्यु दंड साधारणतया खारिज किया जाता है और केवल उन ''विशेष कारणों'' के लिए अधिरोपित किया जा सकता है, जो धारा 354(3) में उपबंधित किए गए हैं । संहिता में एक दूसरा उपबंध है, जो महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति ''विशेष कारण'' का उपयोग करता है । यह धारा 361 है । 1973 की संहिता की धारा 360, सारवान रूप में दंड प्रक्रिया संहिता 1898 (संक्षेप में ''पुरानी संहिता'') की धारा 562 को पुनः अधिनियमित करती है । धारा 361, जो संहिता में नया उपबंध है, न्यायालय के लिए धारा 360 के उपबंध लागू न करने के लिए ''विशेष कारण'' अभिलिखित करना आदेशात्मक बनाती है । इस प्रकार धारा 361 न्यायालय पर यह कर्तव्य अधिरोपित करती है कि वह, जहां कहीं ऐसा करना संभव हो, धारा 360 के उपबंध लागू करे और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो ''विशेष कारणों'' का कथन करे । धारा 360 के संदर्भ में, धारा 361 द्वारा अनुध्यात ''विशेष कारण'' ऐसे होने चाहिए जो न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने के लिए विवश करें कि अपराधी का उसकी आयु, उसके चरित्र और उसके

पूर्व वृत्तों का और उन परिस्थितियों का जिन में अपराध किया गया था, ध्यान रखते हुए मामले की परीक्षा करने के पश्चात् सुधार करना, और उसका पुनर्वास करना असंभव है । विधानमंडल द्वारा ये इस बात के संकेत है कि अपराधियों का सुधार और पुनर्वास और न केवल भय अब हमारे देश में दांडिक न्याय के प्रशासन के प्रमुख उद्देश्यों में से हैं । धारा 361 और धारा 354 (3) दोनों कानूनी पुस्तक में एक ही समय पर प्रविष्ट की गई हैं और वे विधानमंडल द्वारा अपराध विज्ञान में नई प्रवृत्तियों को स्वीकार करने के लिए उभरते हुएं दृश्यों का भाग हैं । अतः यह धारणा बनाना गलत नहीं होगा कि अपराधी की आयु, उसके चरित्र, पूर्व वृत्तों और अन्य परिस्थितियों द्वारा प्रकट उसके व्यक्तित्व का और सुधार करने के लिए अपराधी की सहज साध्यता को दिए जाने वाले दंड का अवधारण करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका आवश्यक रूप से निभानी चाहिए । विशेष कारणों का इन कारकों से कुछ संबंध अवश्य होना चाहिए । आपराधिक न्याय सम्मिश्रित मानवीय समस्याओं और भिन्न प्रकार के व्यक्तियों से व्यवहार करता है । न्यायाधीश को अपराधी के व्यक्तित्व का परिस्थितियों, स्थितियों और प्रतिक्रियाओं के साथ संतुलन करना होता है और अधिरोपित किए जाने वाले समुचित दंड का चयन करना होता है ।'' (पैरा 14)

2.7.3 माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि :–

''यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955 (1955 का 26) द्वारा पुरानी संहिता की धारा 361(5) के संशोधन के पूर्व, जिसे मृत्यु से दंडनीय किसी अपराध के लिए इस धारणा पर 1.1.1956 से प्रभावी किया गया था कि यदि न्यायालय मृत्यु से भिन्न किसी दंड के लिए अपराधी को दंडित करता है तो उसे वह कारण कि मृत्यु का दंड क्यों नहीं पारित किया गया, निर्णय में कथित करने होंगे । 1955 के अधिनियम 26 द्वारा पुरानी संहिता की धारा 367(5) के संशोधन के पश्चात्, यह निर्धारित करना सही नहीं

है कि आजीवन कारावास की सामान्य शास्ति को अपराध को कम करने वाली उन परिस्थितियों के अभाव में, जो अपराध की गंभीरता को कम करती है, नहीं दिया जा सकता । संशोधन के पश्चात् यह मामला न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया है । तथापि न्यायालय को सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए और इसके लिए कारण कथित करने चाहिए कि उसने दोनों दंडादेशों में से अपने विवेकाधिकार से कौन सा दंड अधिरोपित किया है । अतः पूर्ववर्ती नियम कि हत्या के लिए सामान्य दंड मृत्यु है अब प्रवर्तन में नहीं रहा है और अब यह न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर है कि वह इस धारा में विहित दोनों दंडादेशों में से कोई भी पारित करे, किंतु दोनों दंडादेशों में से जो भी वह पारित करता है, न्यायाधीश को उस विशिष्ट दंडादेश को अधिरोपित करने के लिए अपने कारण देने चाहिए । पुरानी संहिता की धारा 367(5) का संशोधन भारतीय दंड संहिता के अधीन दंड को विनियमित करने वाली विधि को प्रभावित नहीं करता है । यह संशोधन प्रक्रिया से संबंधित है और अब न्यायालयों से मृत्यु दंड न देने के लिए कारणों को विस्तार से देने की अपेक्षा नहीं की जाती है ; किंतु वे लघुतर दंड को अधिमान देने वाले ठोस न्यायिक कारणों से विचलित नहीं हो सकते हैं । संहिता की धारा 354(3) पुरानी संहिता में, जैसी वह 1.4.1974 के ठीक पूर्व प्रवृत्त थी, जिसके अनुसार हत्या के लिए उपबंधित किए गए मृत्यु या आजीवन कारावास के दोनों वैकल्पिक दंडादेश सामान्य दंडादेश थे, अंतर्निहित विधायी नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन करती है । अब संहिता की धारा 354(3) के अधीन हत्या के लिए सामान्य दंड आजीवन कारावास है और मृत्यु दंड एक अपवाद है । न्यायालय से दिए गए दंड के लिए कारण कथित करने अपेक्षा की जाती है और मृत्यु दंड की दशा में "विशेष कारणों" को कथित करने की अपेक्षा की जाती है ; अर्थात् कहने के लिए केवल विशेष तथ्य और परिस्थितियां मृत्यु दंड पारित करने का समर्थन करेंगी । "

2.7.4 **अल्लाउद्दीन मियां और अन्य बनाम बिहार राज्य,** (1989) 3 एस. सी. सी. 5 में, उच्चतम न्यायालय ने न्यायालयों द्वारा दंडादेश के चुनाव का अवधारण करने के लिए कतिपय मुख्य मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए हैं । उनके प्रति निम्नलिखित रूप में निर्देश करना उपयोगी होगा :

> ''हमारी न्याय प्रदान करने वाली पद्धति में कई कठिन विनिश्चय पीठासीन अधिकारियों के लिए छोड़ दिए जाते हैं, ऐसा कभी-कभी उनके लिए तराजू या बांटों का उपबंध किए बिना किया जाता है । तथापि हत्या के मामलों में चूंकि चयन मृत्यु दंड और आजीवन कारावास के बीच है, अतः विधानमंडल ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (''संहिता'') की धारा 354 की उपधारा (3) के रूप में मार्गदर्शक सिद्धांत का उपबंध किया है, जो यथा निम्नलिखित है :
>
> ''जब दोषसिद्धि मृत्यु से दंडनीय या अनुकल्पतः आजीवन कारावास से या वर्षों की अवधि के कारावास से दंडनीय है, तो निर्णय में दिए गए दंडादेश के लिए कारणों का कथन किया जाएगा और मृत्यु दंडादेश की दशा में ऐसे दंडादेश के लिए विशेष कारण का कथन किया जाएगा । यह उपबंध मृत्यु या आजीवन कारावास या वर्षों की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्धि के मामलों में सिद्धदोष को दिए गए दंडादेश के समर्थन में कारण देना बाध्यकर बनाता है और आगे आदेश देता है कि यदि न्यायाधीश मृत्यु दंड देता है, तो ऐसे दंडादेश के लिए ''विशेष कारण'' निर्णय कथित किए जाएंगे । जब विधि उन कारणों का, जिनका वह अनुसरण करता है, कथन करने के लिए न्यायाधीश पर कर्तव्य अधिरोपित करती है तो वह दंडादेश के अपने चुनाव को स्पष्ट करने के लिए विधिक बाध्यता के अधीन है । ऐसा कहना बहुत साधारण लग सकता है किंतु उक्त उपबंध में ''विशेष कारण खंड'' की विद्यमानता लक्षित करती है कि न्यायालय योग्य मामलों में मृत्यु की चरम सीमा वाली शास्ति अधिरोपित कर सकता है । जहां कठोरता का दंडादेश अधिरोपित किया जाता है, वहां यह

आवश्यक है कि न्यायाधीश को उस आधार को दर्शित करना चाहिए जिस पर वह उस महत्ता के दंडादेश को न्यायोचित समझता है । जब तक कि विशेष कारण न हों, जो विशिष्ट मामले के तथ्यों के लिए विशेष हों, जिनकी गंभीर दंड को न्यायोचित ठहराने वाले के रूप में सूची बनाई जा सकती हो, तब तक न्यायाधीश मृत्यु दंडादेश नहीं देगा । यह कहा जा सकता है कि यदि न्यायाधीश को यह प्रतीत होता है कि वह दोनों दंडादेशों में से उच्चतर का चयन करने के लिए अपनी पसंद का आधार युक्तियुक्त सुनिश्चितता से स्पष्ट करने में असमर्थ है तो उसका चुनाव न्यूनतर दंडादेश के लिए होना चाहिए । ऐसे सभी मामलों में विधि न्यायाधीश पर प्रत्येक मामले के अच्छे और बुरे कारणों की ध्यानपूर्वक परीक्षा करने के पश्चात् अपना चुनाव करने के लिए बाध्यता डालता है । यह एकदम स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि विशिष्ट रूप से ऐसे कुछ घोर पाश्विक अपराधों के, जो समाज को प्रकंपित करते हैं, अपराधियों के साथ, ऐसे अपराधों के अपराधियों से समाज का संरक्षण करने के लिए दृढ़तापूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए । जहां किसी निश्चित अपराध की घटना शीघ्रतापूर्वक बढ़ रही है और खतरनाक अनुपात ग्रहण करती जा रही है, उदाहरण के लिए एसिड डालने वाली या वधू को जलाने वाली घटनाएं, तो यह न्यायालयों के लिए आवश्यक हो सकता है कि वे समाज का संरक्षण करने के लिए और ऐसा अपराध करने से दूसरों को भयोतपरक करने के लिए उदाहरणात्मक दंड दें । चूंकि विधानमंडल ने अपनी बुद्धि से विचार किया कि कुछ विरले मामलों में अभी भी दूसरों को भयोतपरक करने के लिए और समाज का संरक्षण करने के लिए मृत्यु की चरम सीमा का दंड अधिरोपित करना आवश्यक हो सकता है, तो उसने दंड के चुनाव को इस मताभिव्यक्ति के साथ छोड़ दिया कि न्यायाधीश सिद्ध दोषी को चरम सीमा का दंड दे सकते हैं, यदि ऐसा करने के लिए विशेष कारण विद्यमान हों ।

दंड संहिता के उपबंधों पर आकस्मिक दृष्टि डालने से भी यह दर्शित होगा कि दंडों को अपराधों की गंभीरता के तत्समान सावधानीपूर्वक श्रेणीकृत किया गया

है ; गंभीर गलतियों में विहित दंड कठोर है जबकि लघु अपराधों के लिए उदारता दर्शित की गई है । यहां पुनः युक्ति से काम निकालने के लिए पर्याप्त स्थान है क्योंकि दंड का चुनाव केवल कथित वाह्य सीमाओं के साथ न्यायाधीश के विवेक पर छोड़ दिया गया है । केवल कुछ ऐसे मामले हैं जहां न्यूनतम दंड विहित किया गया है । तब प्रश्न यह उठता है कि प्रत्येक मामले में ऐसे दंड का अवधारण करने के लिए, जो अपराध के योग्य हो, न्यायाधीश कौन सी प्रक्रिया का अनुसरण करे । चुनाव संहिता की धारा 235 की उपधारा (2) में उपवर्णित प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् किया जाना होगा । यह उपधारा यथा निम्नलिखित है :

यदि अपराधी को सिद्धदोष ठहराया जाता है, तो न्यायाधीश, जब तक कि वह धारा 360 के उपबंधों के अनुसार अग्रसर नहीं होता है, दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त की सुनवाई करेगा और तत्पश्चात् विधि के अनुसार उसको दंडादेश देगा ।

अपराधी की सुनवाई की अपेक्षा प्राकृति न्याय के नियम की पुष्टि करने के लिए आशयित है । यह ऋजुता की मौलिक अपेक्षा है कि उस अपराधी से, जो दोष के प्रश्न पर अभियोजन के साक्ष्य पर ध्यान केंद्रित कर रहा था, दोषी पाए जाने पर पूछा जाना चाहिए, यदि उसके पास दंडादेश के प्रश्न पर कुछ कहने के लिए या कोई साक्ष्य देने के लिए है । यह उस समय और भी आवश्यक है जबकि न्यायालयों से साधारणतया दंडादेश देने के मामले में विस्तृत रूप से विवेक का उपयोग करके चुनाव करने की अपेक्षा की जाती है । सही दंडादेश को अधिरोपित करने का अवधारण करने में न्यायालय की सहायता करने के लिए विधानमंडल ने धारा 235 की उपधारा (2) को पुरःस्थापित किया था । अतः उक्त उपबंध दोहरे प्रयोजन को पूरा करता है ; वह अभियुक्त को दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई का अवसर देकर प्राकृतिक न्याय के नियम को पूरा करता है और उसी समय न्यायालय की दिए जाने वाले दंडादेश का चुनाव करने में सहायता करता है ।

चूंकि उपबंध न्यायालय के समक्ष उस सभी सुसंगत को सामग्री जो दंडादेश के प्रश्न पर प्रभाव रखती हो, न्यायालय के समक्ष रखने के लिए अपराधी को अवसर देने के लिए आशयित है, अतः इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह उपबंध प्रशंसनीय है और इसका कठोर रूप से अनुकरण किया जाना चाहिए । यह स्पष्ट रूप से आदेशात्मक है और इसे केवल औपचारिकता के रूप में नहीं माना जाना चाहिए ।

2.7.5 कठोरता के दंड अपराध की गंभीरता को प्रदर्शित करने के लिए, विधि के लिए आदर का संवर्द्धन करने के लिए, अपराध के लिए उचित दंड का उपबंध करने के लिए, आपराधिक आचरण को उचित रूप से भयपरतिकारी करने के लिए और समाज का आगे समरूप आचरण से संरक्षण करने के लिए अधिरोपित किए जाते हैं । यह त्रिपरती प्रयोजनों को पूरा करता है अर्थात् : (i) दंडात्मक ; (ii) भयपरतिकारी और (iii) संरक्षात्मक । इसीलिए न्यायालय ने **बचन सिंह** वाले मामले (1980) 2 एस. सी. सी. 684, में यह कहा था कि जब दंडादेश के चुनाव के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है तो न्यायालय को न केवल अपराध और पीड़ित को देखना चाहिए बल्कि अपराधी की परिस्थितियों को और समाज पर अपराध के प्रभाव को भी देखना चाहिए । जब तक की अपराध की प्रकृति और अपराधी की परिस्थितियां यह न प्रकट करती हों कि अपराधी समाज के लिए विभीषिका है और आजन्म कारावास का दंड पूर्णतया अपर्याप्त होगा तब तक न्यायालय को साधारणतया लघुतर दंड अधिरोपित करना चाहिए और न कि मृत्यु का चरम सीमा वाला दंड, जो केवल अपवादात्मक मामलों के लिए आरक्षित रखा जाना चाहिए । **माच्छी सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (1983) 3 एस. सी. सी. 470 के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में न्यायालय ने **बचन सिंह** (ऊपर उद्धृत) मामले में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों को छांटकर निकालने के पश्चात् यह कहा कि केवल उन अपवादात्मक मामलों में जिन में अपराध ऐसा पाश्विक, पैशाचिक और विभत्स है, जो समाज की सामूहिक चेतना को आघात पहुंचाता है, मृत्यु दंडादेश देना अनुज्ञेय होगा ।

2.7.6 निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांतों को, जो **बचन सिंह** [(1980) 2 एस. सी. सी. 684] वाले मामले से प्रकट होते हैं, ऐसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को लागू करना होगा जहां मृत्यु दंडादेश के अधिरोपण का प्रश्न उत्पन्न होता है, जैसा कि **माच्छी सिंह** मामले (1983) 3 एस. सी. सी. 470 में पृष्ठ 489 पर दिया गया है :

(i) मृत्यु की चरम सीमा वाली शास्ति को चरम सीमा वाली आपराधिकता के गंभीरतम मामलों में के सिवाए नहीं दिया जाना चाहिए ।

(ii) मृत्यु अनुशास्ति के लिए विकल्प का प्रयोग करने के पूर्व 'अपराधी' की परिस्थितियों को भी 'अपराध' की परिस्थितियों के साथ ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(iii) आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश एक अपवाद है । मृत्यु दंडादेश केवल तब अधिरोपित किया जाना चाहिए जब आजीवन कारावास अपराध की सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पूर्णतया अपर्याप्त दंड प्रतीत होता हो और यह तब जब कि, केवल तब जब कि, आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करने के लिए विकल्प का प्रयोग चेतन रूप में अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों को और सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नहीं किया जा सकता हो ।

(iv) परिस्थितियों में वृद्धि करने वाला और उन्हें कम करने वाला संतुलन पत्र बनाया जाना होगा और ऐसा करने में कम करने वाली परिस्थितियों को पूर्ण श्रेय देना होगा और विकल्प का प्रयोग किए जाने के पूर्व अपराध में वृद्धि करने वाली और उसे कम करने वाली परिस्थितियों के बीच ठीक संतुलन बनाना होगा ।

2.7.7 विरले मामलों में से विरलतम में जब समाज की सामूहिक चेतना को इस प्रकार आघात पहुंचता है कि वह न्यायिक शक्ति केंद्र के धारकों से मृत्यु शास्ति बनाए रखने की

वांछनीयता के बारे में या अन्यथा उनकी व्यक्तिगत राय का ध्यान रखे बिना मृत्यु की शास्ति देने की आशा करती है तो मृत्यु दंडादेश दिया जा सकता है । समाज निम्नलिखित परिस्थितियों में ऐसी भावनाओं को ग्रहण कर सकता है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **लहना सिंह** वाले (ऊपर पृष्ठ 86 पर पैरा 23-24) मामले में कहा गया है :

(1) जब हत्या अत्यधिक पाश्विक, क्रूरतम, पैशाचिक, विभत्स या भीरू रीति से की जाती है, जिससे कि समाज में गहरा और अत्यधिक क्रोध उत्पन्न होता है ।

(2) जब हत्या किसी ऐसे हेतु के लिए की जाती है, जो पूर्ण दुश्चरित्रता और कमीनेपन को दर्शित करता है अर्थात् धन या इनाम के लिए किराए पर लिए गए हत्यारे द्वारा हत्या ; या ऐसे व्यक्ति के लाभों के लिए निष्ठुरतापूर्वक हत्या जिस पर हत्यारा प्रभाव रखने की स्थिति में या विश्वास रखने की स्थिति में है, या हत्या मातृभूमि को धोखा देने के क्रम में की गई है ।

(3) जब हत्या किसी अनुसूचित जाति या अल्पसंख्यक समुदाय आदि के सदस्य की व्यक्तिगत कारणों से नहीं, किंतु ऐसे परिस्थितियों में जो सामाजिक गुस्से को उत्पन्न करती हैं या 'वधू को जलाने वाले' या 'दहेज-मृत्यु' के मामलों में की जाती है या जब हत्या एक बार फिर दहेज निष्कर्षित करने के लिए पुनः विवाह करने के क्रम में या आकर्षण के कारण दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने के क्रम में की जाती है । (जोर दिया गया)

(4) जब अपराध अनुपात में बहुत अधिक है ; उदारहण के लिए जब बहुल हत्याएं अर्थात् किसी कुटुंब के सभी या करीब-करीब सभी सदस्यों की या किसी विशिष्ट जाति, समुदाय या परिक्षेत्र के व्यक्तियों की बड़ी संख्या में की जाती हैं ।

(5) जब हत्या का पीड़ित कोई निर्दोष बच्चा या कोई असहाय स्त्री या वृद्ध अथवा कमजोर व्यक्ति या किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जिस पर हत्यारा स्वामित्व

रखने की स्थिति में है या कोई सार्वजनिक व्यक्ति जिसे साधारणतया समाज द्वारा प्यार किया जाता है या उसे आदर दिया जाता है ।

2.7.8 यदि पूर्वोक्त प्रतिपादनाओं की दृष्टि से सभी परिस्थितियों का विश्वव्यापी दृष्टिकोण रखते हुए और विरले मामलों में विरलतम के लिए परीक्षण के रूप में प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तरों को ध्यान में रखते हुए, मामले की परिस्थितियां ऐसी हैं कि मृत्यु दंडादेश का समर्थन होता है तो न्यायालय ऐसा करने के लिए अग्रसर होगा ।

2.8 **ऐसे कुछ मामले जहां माननीय उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु दंड का आजीवन कारावास में लघुकरण कर दिया है :**

2.8.1 **माच्छी सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**, (1983) 3 एस. सी. सी. 470 में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** में संवैधानिक न्यायपीठ के विनिश्चय पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि जहां अत्यंत सदोषता का कोई सबूत नहीं है वहां चरम सीमा की शास्ति दिए जाने की आवश्यकता नहीं है । उच्चतम न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि मृत्यु की चरम सीमा वाली शास्ति विरले मामलों से विरलतम में ही दी जा सकती है जहां अपराध में वृद्धि करने वाली परिस्थितियां ऐसी हैं कि चरम सीमा वाली शास्ति न्याय की पूर्ति करती है ।

2.8.2 **सुरेश** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**, 2001 क्रिमि. एल. जे. 1462 (एस. सी.) में दोषसिद्धि एक बाल साक्षी के साक्ष्य पर आधारित थी और मुख्य न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने न्यायालय के लिए बोलते हुए अभिनिर्धारित किया कि किसी बालक के साक्ष्य पर आधारित दोषसिद्धि में मृत्यु की चरम सीमा वाली शास्ति अधिरोपित करना सुरक्षित नहीं होगा । आगे यह कहा कि चरम सीमा वाला दंडादेश किसी बाल साक्षी के साक्ष्य से मुख्य समर्थन नहीं प्राप्त कर सकता और ऐसे साक्ष्य पर, चाहे वह सच हो, कार्य करना किसी जीवन को समाप्त करने के लिए पर्याप्त रूप से सुरक्षित नहीं है ।

2.8.3 **राजाराम यादव** बनाम **बिहार राज्य,** 1996 क्रिमि. एल.जे. 2307 : ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1631, में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि कोई भयानक और क्रूर घटना हुई किंतु उसने मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करना समुचित नहीं समझा और उसे आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि :

> "हम अनुभव करते हैं कि यद्यपि हत्याएं पूर्व चिंतन करके और सुविचार करके अत्यंत क्रूरता और पाश्विकता से की गई है, जिनके लिए साधारण तथा मृत्यु का दंडादेश पूर्ण रूप से न्यायोचित होगा, मामले के विशेष तथ्यों की दृष्टि से मृत्यु का चरम सीमा वाला दंडादेश देना उचित नहीं होगा ।"

2.8.4 "**शेख अब्दुल हामिद और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य,** (1998) 3 एस.सी.सी. 188" में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि -

> "अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश देने में, जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए विशेष कारण ये थे कि वह ऐसा क्रूरतम कार्य था जहां अपीलार्थियों ने निर्दोष बच्चे को भी नहीं छोड़ा था और हेतु संपत्ति को हड़पना था । हमने दंडादेश के प्रश्न पर और अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश देने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों पर गहनतम विचार किया है । ऊपर कथित मार्गदर्शक सिद्धांतों का ध्यान रखते हुए, यह देखा जा सकता है कि वर्तमान मामले में अभियोजन द्वारा यह नहीं बताया गया था कि यह निर्दयतापूर्वक की गई हत्या थी । रिकार्ड पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि हत्या कैसे हुई । ऐसे साक्ष्य की अनुपस्थिति में हम यह नहीं पाते कि यह मामला हमारे सामने विरले मामलों में से विरलतम के प्रवर्ग के भीतर आता है और जिसमें मृत्यु की चरम सीमा वाली शास्ति दी जा सकती है ।"

2.8.5 ''**रोनी एलियास रोनाल्ड जेम्स अलवारिस और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**, (1998) 3 एस. सी. सी. 625'', में जहां एक से अधिक अपराधी थे, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि :

> ''तथापि सुधार और पुनर्वास की संभाव्यता को समाप्त नहीं किया जा सकता । तथ्यों और परिस्थिति से यह भविष्यवाणी करना संभव नहीं है कि तीन में से किसने कौन सी भूमिका निबाही । यह हो सकता है कि किसी एक की भूमिका डिग्री में दूसरों से अधिक नृशंस रही हो और इसके विपरीत भी हो सकता है । जहां इसके समरूप मामले में यह कहना संभव नहीं है कि किसका मामला ''विरले मामलों में से विरलतम'' के भीतर आता है, वहां यदि मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया जाता है तो न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी । ''

2.8.6 ''**गुरनाम सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** (1998) 7 एस.सी.सी. 722 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत करते हुए कहा है कि :-

> ''हमारा भी यह विचार है कि अपहरण के लिए हेतु के बारे में और अभियुक्त के संबंध में इस बारे में कि किसने वास्तव में उनकी मृत्यु कारित कीं और उस रीति तथा परिस्थितियों के बारे में जिनमें वे कारित की गई थीं, कोई साक्ष्य न होने से, अभिहित न्यायालय को अपीलार्थी गुरनाम सिंह पर मृत्यु दंडादेश अधिरोपित नहीं करना चाहिए था ।

2.8.7 ''**अल्लाउद्दीन मियां और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** (1989) 3 एस.सी.सी. 5'' में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि :-

'' इस निष्कर्ष पर आते हुए कि उल्लाउद्दीन मियां और कियामुद्दीन मियां हत्या के दोषी हैं, अगला प्रश्न यह है कि उनको क्या दंड दिया जाना चाहिए अर्थात् जीवन का निर्वापन या जीवन के लिए कैद । भारतीय दंड संहिता की धारा 302 मृत्यु और आजीवन कारावास के बीच चुनाव करने के लिए न्यायालय पर भारी कर्तव्य डालती है । जब न्यायालय को इनके बीच में चयन करने के लिए कहा जाता है तो सिद्धदोष चिल्लाते हैं 'मैं जीना चाहता हूं' और अभियोजक की मांग कि 'वह मृत्यु के योग्य है' तो यह बिना कहे ही कहा जा सकता है कि न्यायालय को दंड के चुनाव में बहुत अधिक चिंता और संवेदनशीलता दर्शित करनी चाहिए ।''

2.9 **आजीवन कारावास से संपूर्ण जीवन के लिए कारावास अभिप्रेत है :**

2.9.1 धारा 304-ख में अधिकतम दंडादेश, जो दिया जा सकता है, आजीवन कारावास है ।

2.9.2 **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 600 : 1961 क्रिमि. एल.जे. 736 : 1961 (3) एस.सी.आर. 440), माननीय उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास का दंड किसी निश्चित अवधि के लिए नहीं है और आजीवन कारावास को, प्रथमदृष्टया, सिद्धदोष व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की संपूर्ण शेष अवधि के लिए कारावास के रूप में माना जाना चाहिए ।

2.9.3 **जाहिद हुसैन** बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य**, (2001) 3 एस.सी.सी. 750, में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि :-

''4. उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 161, दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय दंड संहिता के उपबंधों की परीक्षा करने के पश्चात् लगातार यह अभिनिर्धारित किया है कि आजीवन कारावास का कोई दंडादेश कारावास के 20 वर्ष की समाप्ति पर, छूट को सम्मलित करते हुए स्वतः समाप्त नहीं होता क्योंकि आजीवन कारावास के दंडादेश से कैदी के संपूर्ण जीवन के लिए दंडादेश अभिप्रेत

है जब तक की समुचित सरकार दंडादेश की संपूर्ण या भागतः अवधि के लिए छूट देने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने का चुनाव न करे । (देखिए **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य,** ए.आई.आर. 1961 एस.सी. 600; 1961 क्रिमि. एल.जे. 736 : (1961) 3 एस.सी.आर. 440 ; **मध्य प्रदेश** बनाम **रतन सिंह,** ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 1552 : 1976 क्रिमि. एल.जे. 1192 : (1976) 3 एस.सी.सी. 470 : 1926 एस.सी.सी. (क्रिमि.) 428 ; **सोहन लाल** बनाम **आशाराम,** (1981) एस.सी.सी. 106 ; और **भागीरथ** बनाम **दिल्ली प्रशासन,** 1965 क्रिमि. एल.जे. 1179 (1986) 2 एस.सी.सी. 580 : 1985 एस.सी.सी. (क्रिमि.) 280.

5. हम नीचे पश्चिम बंगाल कारावास अधीक्षण और प्रबंध नियम (संक्षेप में 'नियम') के नियम 591 के उप नियम (4) और उप नियम (29) को उद्धृत करते हैं :

''(4) राज्य सरकार उप नियम (1) और उप नियम (2) के अधीन उसको प्रस्तुत किए गए कैदियों के मामलों का विचार करने में निम्नलिखित को ध्यान में रखेगी - (i) प्रत्येक मामले में परिस्थितियां, (ii) दोषसिद्ध के अपराध का स्वरूप (iii) कारावास में उसका आचरण, और (iv) आपराधिक आदतों में उसके वापस जाने की या दूसरों को अपराध करने के लिए उकसाने की संभाव्यता । यदि राज्य सरकार का समाधान हो जाता है कि कैदी को समाज के लिए या जनता के लिए किसी खतरे के बिना निर्मुक्त किया जा सकता है तो वह दंड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 401 के अधीन उसकी निर्मुक्ति के लिए आदेश जारी करने के लिए उपाय कर सकती है ।

(29) ऐसा प्रत्येक मामला, जिसमें ऐसा सिद्धदोषी, जिसने पूर्वगामी नियमों में से किसी का लाभ प्राप्त नहीं किया है, लगातार निरोध की 20 वर्ष की अवधि, जिसमें अर्जित छूट, यदि कोई है, भी है, पूरी करने वाला है, उस कारावास के

अधीक्षक द्वारा, जिसमें सिद्धदोष तत्समय के लिए निरुद्ध है, ऐसी पूरी होने वाली अवधि के तीन मास पूर्व, महानिरीक्षक के माध्यम से, राज्य सरकार के आदेशों के लिए, प्रस्तुत किया जाएगा । यदि सिद्धदोष के कारावास के अभिलेख, उसके निरोध के पिछले तीन वर्षों के दौरान, समाधानप्रद पाए जाते हैं तो राज्य सरकार उसके दंडादेश की शेष अवधि के लिए छूट दे सकेगी ।

6. ये उप-नियम किसी आजीवन सिद्धदोषी की, छूट सहित उसके निरोध के 20 वर्ष पूरा करने के पश्चात्, स्वतः निर्मुक्ति के लिए उपबंध नहीं करते हैं । इन उप नियमों के अधीन केवल अधिकार, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि आजीवन सिद्धदोषी ने अर्जित किया है, यह है कि उसको जेल प्राधिकारियों द्वारा संबद्ध राज्य सरकार को समयपूर्व निर्मुक्ति के लिए विचारण हेतु अपना मामला रखवाए जाने का अधिकार है और ऐसा करने में सरकार उप नियम (4) में वर्णित मार्गदर्शित सिद्धांतों का अनुसरण करेगी ।

7. अधिनियम की धारा 61 का स्पष्टीकरण यथा निम्नलिखित है :-

"स्पष्टीकरण इस धारा के अधीन कारावास की कुल अवधि की परिगणना करने के प्रयोजन के लिए, आजीवन कारावास की अवधि को 20 वर्ष के कारावास की अवधि के समतुल्य रूप में लिया जाएगा ।"

8. यह स्पष्टीकरण उच्चतम न्यायालय के समक्ष **लक्ष्मण नस्कर** (आजीवन सिद्ध दोषी) बनाम **पश्चिम बंगाल राज्य** (2000) 7 एस.सी.सी. 626 ; 2000 एस.सी.सी. (क्रिमि.) 280, में विचारार्थ सामने आया था और इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि उक्त स्पष्टीकरण धारा 61 के अधीन आजीवन सिद्धदोषी के कारावास की उस कुल अवधि की केवल गणना करने के प्रयोजन के लिए है, जो 20 वर्ष के लिए कारावास की अवधि के समतुल्य रूप में मानी जाएगी और कोई आजीवन सिद्धदोष विधि के इस उपबंध के अधीन स्वतः

निर्मुक्ति के लिए हकदार नहीं होगा । अतः हम श्री मलिक, विद्वान् वरिष्ठ परामर्शी, द्वारा किए गए निवेदन में कोई तथ्य नहीं पाते हैं । [श्री मलिक ने निवेदन किया था कि नियम 591 के उप नियम (4) और उप नियम (29) की दृष्टि से, सभी याचिकाकर्ता अधिकार के रूप में निर्मुक्ति के लिए हकदार थे क्योंकि उनके कारावास की कुल अवधि 20 वर्ष से अधिक थी ।]

11. सरकार द्वारा आजीवन सिद्धदोषियों की समय पूर्व निर्मुक्ति के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांत बनाए गए थे, अर्थात् :

(i) क्या अपराध व्यक्तिगत अपराध का कार्य है, जिससे समाज पर विस्तृत रूप से प्रभाव नहीं पड़ता है ।

(ii) क्या भविष्य में अपराध की पुनरावृत्ति का कोई अवसर है ।

(iii) क्या इन सिद्धदोषियों को और परिरुद्ध करने का कोई लाभदायक प्रयोजन है,

(iv) क्या सिद्धदोषियों ने अपराध करने की क्षमता खो दी है ।

(v) सिद्धदोषियों के परिवारों की सामाजिक-आर्थिक दशा ।

12. पुनर्विलोकन बोर्ड ने याचिकाकर्ताओं की समय पूर्व निर्मुक्ति मंजूर करने से निम्नलिखित आधारों पर इंकार कर दिया : (1) पुलिस रिपोर्ट विरुद्ध है ; (2) सिद्धदोषी अधिक आयु के व्यक्ति नहीं है और इस प्रकार उन्होंने अपराध करने की क्षमता नहीं खोई है ; (3) चूंकि अन्य सह-सिद्धदोषी कारावास से बाहर आने का प्रयास कर रहे थे, अतः असामाजिक क्रियाकलापों के लिए उनके पुनः ग्रुप बनाने की संभव्यता थी ; (4) अपराध व्यक्तिगत अपराध का कार्य नहीं था किंतु समाज पर विस्तृत रूप से प्रभाव डाल रहा था ; (5) सिद्धदोषी असामाजिक

थे और ; (6) वे साक्षी जिन्होंने विचारण में साक्ष्य दिया था और स्थानीय व्यक्ति समयपूर्व निर्मुक्त कर दिए जाने की घटना में बदला लिए जाने से भयभीत थे ।

14... याचिकाकर्ताओं का आचरण, कारावास में रहते हुए, इस बारे में विचार किए जाने के लिए महत्वपूर्ण कारक है कि क्या उन्होंने निरोध की लंबी अवधि के कारण अपराध करने की अपनी क्षमता खो दी है । उन साक्षियों के विचार, जिनकी विचारण के दौरान परीक्षा की गई थी और स्थानीय जनता यह अवधारित नहीं कर सकते कि क्या याचिकाकर्ता, यदि उन्हें समयपूर्व निर्मुक्त कर दिया जाए तो उस परिक्षेत्र के लिए खतरा बनेंगे । इस बारे में याचिकाकर्ताओं का उस अवधि के दौरान, जब वे दंडादेश भुगत रहे थे, आचरण ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना होगा । केवल आयु कारक नहीं हो सकती यह विचार करते हुए कि क्या याचिकाकर्ता अब भी अपराध करने की क्षमता रखते हैं या नहीं क्योंकि यह कारावास के दौरान उनके मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन पर निर्भर करेगा ।

2.9.4 **रविन्द्र त्रिम्बक चौथमल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य,** (1996) 4 एस.सी.सी. 148 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश का आजीवन कारावास में लघुकरण कर दिया और आगे आदेश दिया कि धारा 201 के अधीन पारित दंडादेश समवर्ती रूप में नहीं किंतु क्रमिक रूप से चलेगा :

ऐसा करने में, न्यायालय ने कहा :-

"हमने इस प्रश्न पर सुविचार किया है और हम मामले को उस प्रवर्ग में रखने में समर्थ नहीं हुए हैं जिसमें इसे "विरले मामलों में से विरलतम" किस्म का माना जा सकता । यह इसलिए है क्योंकि दहेज-मृत्यु अब हत्या की उन किस्मों में नहीं रही है । दहेज-मृत्यु संबंधी बढ़ती हुई संख्या पर इसका असर पड़ेगा । बढ़ते हुए इस ग्राफ को रोकने के लिए हमने, एक समय पर दंडादेश को बनाए रखने पर विचार किया किंतु हमें मृत्यु अनुशास्ति के भयोतपरक प्रभाव के बारे में संदेह

है । अतः हम मृत्यु दंडादेश को बनाए रखने से अपने आप को रोकते हैं, यद्यपि हम हमारे समक्ष प्रस्तुत अपीलार्थी के समान तिरस्करणीय चरित्र के सर्वनाश की इच्छा करते हैं । हम मृत्यु दंडादेश का, इसलिए, कठोर आजीवन कारावास में लघुकरण करते हैं ।

किंतु यह हमारे अनुसार योग्य मामला है जहां धारा 201/34 के अधीन अपराध के लिए दिया गया दंडादेश, जो 7 वर्ष के लिए कठोर करावास है, जो विद्यमान किस्म के मामले के लिए अधिकतम है, उस दृष्टि से बनाए रखा जाना चाहिए जो हत्या के करने से संबंधित साक्ष्य का मिटाना कारित करने के लिए रखी गई है - वह नृशंस तरीका जिसमें सिर अलग किया गया था और शरीर को नौ टुकड़ों में काटा गया था । ये सब अधिकतम दंडादेश के लिए चीत्कार करते हैं । केवल इतना ही नहीं, यह दंडादेश क्रमिक रूप से भुगता जाएगा, सहवर्ती रूप से नहीं, जो मृत शारीर का गायब करना कारित करने के लिए अपनाई गई घिनौनी, विभत्स और भयानक उक्ति के लिए हमारा कठोर अननुमोदन दर्शित करने के लिए है ।''

2.10 **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 और धारा 304-ख :**

2.10.1 धारा 304-ख और धारा 302 स्पष्ट रूप से विभाजनीय है । न्यायालय को आरोप विरचित करने के पूर्व यह देखना और विवेचन करना चाहिए कि क्या आरोप धारा 302 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध विरचित किया जा सकता है या नहीं । धारा 304-ख के अधीन आरोप उन मामलों में लगाया जाता है जहां यह स्पष्ट नहीं है कि मृत्यु का कारण क्या है । यह धारा उस बारे में कहती है कि जहां मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित होती है । यह दर्शित करता है कि यह स्पष्ट हो सकता है कि मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति के कारण हुई है अथवा सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा है (न्यायालय कहते हैं कि इसके अंतर्गत आत्महत्या भी आती है)

अतः जो स्पष्ट नहीं है वह यह है कि क्या वे व्यक्ति, जो क्रूरता करते हैं या तंग करते हैं, दाह या शारीरिक क्षति के कारण के लिए उत्तरदायी हैं ।

2.10.2 **हेमचन्द्र** बनाम **हरियाणा राज्य,** 1994 (6) एस.सी.सी. 727 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख कहती है कि जब प्रश्न यह है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज-मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व, ऐसी स्त्री पर ऐसे व्यक्ति द्वारा दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज-मृत्यु कारित की है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त का पीड़ित की मृत्यु के साथ सीधे संबंध का सबूत अनिवार्य नहीं है । अभियुक्त का मृत्यु के साथ सीधा संबंध न होने पर अभियुक्त को दिए जाने वाला दंडादेश का संतुलन करने में इस पर विचार करना होगा ।

2.10.3 **अशोक कुमार** बनाम **राजस्थान राज्य,** 1991 (1) एस.सी.सी. 166 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिकथित किया है कि हत्या के लिए हेतु हो सकता है और नहीं भी हो सकता है । किंतु दहेज मृत्यु में, यह अंतर्निहित है और इसलिए, न्यायालय से जो अपेक्षा की जाती है वह यह है कि वह परीक्षा करे कि किसने इसे कार्य रूप में परिणत किया क्योंकि इसके लिए हेतु व्यक्ति का नहीं किंतु कुटुंब का होता है ।

2.11 **आरोप का विरचन - क्या धारा 302 के अधीन है या धारा 304-ख के अधीन :**

2.11.1 **शाम्न साहब एम. मुलतानी** बनाम **कर्नाटक राज्य,** (2001) 2 एस. सी. सी. 577 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है :-

> "हमारे सामने उठाया गया प्रश्न यह है कि क्या किसी ऐसे मामले में जहां अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप साबित करने में

असफल रहा है, किंतु तथ्यों से धारा 304-ख के संघटक सामने आए हैं, तो क्या न्यायालय उसे उक्त अपराध का, उसे आरोप में सम्मिलित न किए जाने के कारण, सिद्धदोषी ठहरा सकता है ।

14. संहिता की धारा 221 और धारा 222 ऐसे दो उपबंध हैं जो किसी ऐसे अपराध के, जिसे आरोप में सम्मिलित नहीं किया गया है, अपराधी को सिद्धदोषी ठहराने के लिए दंड न्यायालय की शक्ति के बारे में हैं । संहिता की धारा 221 को लागू करने के लिए प्राथमिक शर्त यह है कि न्यायालय को आरोप की विरचना करने के समय इस बारे में संदेह का अनुभव होना चाहिए कि कई कार्यों में से (जो साबित हो सकें), कौन सा कार्य कार्यों की प्रकृति या कार्यों की आवलियों के कारण अभियुक्त के विरुद्ध अभिकथित अपराध का गठन करेगा । ऐसे मामले में धारा उस अपराध के लिए अभियुक्त को सिद्धदोषी ठहराने की अनुज्ञा देती है जिसके लिए उसे दर्शित किया गया है कि उसने किया है, यद्यपि उसे इससे आरोपित नहीं किया गया था ।

15. संहिता की धारा 222 (1) ऐसे मामले के बारे में बताती है "जब किसी व्यक्ति को विभिन्न विशिष्टताओं को समाविष्ट करने वाले किसी अपराध से आरोपित किया जाता है ।" यह धारा न्यायालय को "किसी लघु अपराध के अपराधी को यद्यपि उसे उससे आरोपित नहीं किया गया था ।" सिद्धदोषी ठहराने की अनुज्ञा देती है । उपधारा (2) समरूप किंतु हलकी सी भिन्न स्थिति के बारे में है ।

"222 (2) जब किसी व्यक्ति को किसी अपराध से आरोपित किया जाता है और ऐसे तथ्य साबित किए जाते हैं जो उसे लघु अपराध में बदल देते हैं तो उसे लघु अपराध के लिए सिद्धदोषी ठहराया जा सकता है, यद्यपि उसे उससे आरोपित नहीं किया गया है ।"

16. संहिता की धारा 222 के प्रयोजन के लिए "किसी लघु अपराध से क्या अभिप्रेरित है ?" यद्यपि उक्त अभिव्यक्ति को संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है किंतु संदर्भ से यह माना जा सकता है कि लघु अपराध का परीक्षण केवल यह नहीं है कि विहित दंड बड़े अपराध से कम है । इस धारा में दिए गए दो उदाहरण इन मुद्दों के बारे में ठीक से स्पष्ट करेंगे । यदि केवल दो अपराध सजातीय अपराध है, जिनमें मुख्य संघटक सामान्य है, तो उनमें से एक जो लघुतर दंड से दंडनीय है दूसरे अपराध की तुलना में लघु अपराध के रूप में माना जाएगा ।

17. भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन किसी अपराध की संरचना भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या के अपराध की विरचना से बड़े पैमाने पर भिन्न है और इसलिए पूर्ववर्ती को पश्चातवर्ती की तुलना में लघु अपराध के रूप में नहीं माना जा सकता । तथापि यह स्थिति भिन्न होगी जब आरोप में भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन भी अपराध सम्मिलित है (उस स्त्री का, जिस पर क्रूरता की गई है, पति या पति का नातेदार) ।

18. इसलिए जब किसी व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और धारा 498-क के अधीन इस अभिकथन पर किसी अपराध से आरोपित किया जाता है कि उसने किसी वधू की मृत्यु, विवाह के सात वर्ष की अवधि के भीतर, दहेज की मांग के साथ उसे तंग करने के पश्चात् कारित की है, तो वहां ऐसी स्थिति, जो इस मामले में है, उत्पन्न हो सकती है कि हत्या का अपराध अभियुक्त के विरुद्ध स्थापित नहीं हुआ है । चाहे भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध के लिए आवश्यक अन्य संघटक साबित हुए हों । क्या अपराधी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध के लिए उक्त अपराध को आरोप का भाग बनाए बिना, ऐसे किसी मामले में सिद्धदोषी ठहराया जा सकता है ।

19. उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने (न्यायमूर्ति के. जयचंद्र रेड्डी और न्यायमूर्ति जी. एन. रे) 1994 एस.सी.सी. (क्रिमि.) 235 में **लखजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य,** 1994 सप्ली. 1 एस.सी.सी. 173 में अभिनिर्धारित किया है कि यदि कोई अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन किसी ऐसे अपराध को साबित करने में असफल रहा है, जो अकेला आरोप में सम्मिलित किया गया था, किंतु यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध साक्ष्य में साबित हुआ है तो यह न्यायालय के लिए अनुज्ञेय है कि वह अपराधी को पश्चातवर्ती अपराध के लिए दोषी ठहराए ।

.....

21. मामले का निर्णायक बिंदु यह है कि : क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अधीन किसी अपराध के अपराधी को सिद्धदोष ठहराने के क्रम में ऐसी प्रक्रिया ग्रहण करके न्याय की असफलता के लिए कोई अवसर होगा जब उक्त अपराध के लिए आवश्यक सभी संघटक साक्ष्य में आ गए हों, यद्यपि उसे उक्त अपराध से आरोपित नहीं किया गया था ? इस संदर्भ में संहिता की धारा 464 (1) के प्रति निर्देश विरुद्ध है ।

"464. (1) सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय का कोई निष्कर्ष, दंडादेश या आदेश केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था या आरोप में कोई गलती, लोप या अनियमितता थी, जिसके अंतर्गत आरोपों का असंयोजन भी है, जब तक कि अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण के न्यायालय की राय में, न्याय की असफलता वस्तुतः उसके द्वारा न हुई हो ।" (जोर दिया गया)

22. दूसरे शब्दों में कोई दोषसिद्धि विधिमान्य होगी चाहे आरोप में कोई लोप या अनियमितता हो, परंतु यह तब जबकि उससे न्याय की कोई असफलता न हुई हो ।

23. हम बहुधा ''न्याय की असफलता'' के बारे में सुनते हैं और बहुधा किसी दंड न्यायालय में निवेदन उक्त अभिव्यक्ति के समान होता है । कदाचित यह बहुत लचीली या उदार अभिव्यक्ति है, जो मामले की किसी परिस्थिति के योग्य हो सकती है । ''न्याय की असफलता'' कभी-कभी शब्दविज्ञान संबंधी भ्रम के रूप में प्रतीत होगी **(उपमा लॉर्ड डिप्लॉक इन टाउन इनवेस्टमेंट लि.** बनाम **डिपार्टमेंट ऑफ दि एनवायरोनमेंट)** 1 इल. ए.ई.आर. 813 : 1978 ए.सी. 359 : (1977) 2 डब्ल्यू. एल. आर. 450 (एच.एल.) से उधार ली गई है । दंड न्यायालय के, विशेष रूप से उच्चतर न्यायालय को यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या वास्तव में न्याय की असफलता थी या यह केवल क्षद्मावरण है, घनिष्ठ रूप से परीक्षा करनी चाहिए ।

.....

25. अब हमें इस बात की परीक्षा करनी है कि क्या अपीलार्थी को, अभिलेख पर दिए गए साक्ष्य के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन विरचित किए गए आरोप में, उसे गणना के रूप में सम्मिलित किए गए बिना, सिद्धदोषी ठहराया जा सकता है । धारा 304-ख को साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के साथ पैकेज के रूप में 9.11.1986 को कानूनी पुस्तक में लाया गया है ।

.....

28. ''साक्ष्य अधिनियम की धारा 4 के अधीन जब कभी इस अधिनियम द्वारा यह

निदेशित किया गया है कि न्यायालय किसी तथ्य की उपधारणा करेगा तो वह ऐसे तथ्य को साबित हुए रूप में, जब तक कि उसे अननुमोदित नहीं कर दिया जाता है, मानेगा ।'' अतः न्यायालय के पास यह उपधारणा करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है कि अभियुक्त ने, जब तक कि अभियुक्त यह नासाबित नहीं कर देता है, दहेज-मृत्यु कारित की थी । यह न्यायालय के लिए एक कानूनी विवशता है । तथापि अभियुक्त के लिए यह स्वतंत्रता है कि वह उक्त अनिवार्य उपधारणा को नासाबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करे क्योंकि ऐसा करने का भार सुस्पष्ट रूप से उस पर है । वह ऐसे भार का, अभियोजन के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के माध्यम से उत्तर देकर या प्रतिरक्षा पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करके या दोनों के द्वारा उन्मोचन कर सकता है ।

29. इस प्रक्रम पर हम उक्त अपराध और भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के बीच, जो धारा पहले केवल आत्महत्या के लिए उत्प्रेरण करने का अपराध थी, विधिक स्थिति में अंतर देख सकते हैं । यह धारा 1983 तक कानूनी पुस्तक में बिना किसी व्यावहारिक उपयोग के रही थी । किंतु साक्ष्य अधिनियम में धारा 113-क के पुरःस्थापन द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन उक्त अपराध ने विस्तृत आयाम अर्जित कर लिए हैं और वह विवाह संबंधी गंभीर अपराध हो गया है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-क कहती है कि कतिपय शर्तों के अधीन, जो दहेज-मृत्यु के लिए शर्तों के करीब-करीब समरूप हों, न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह उपधारणा कर सकता है कि ऐसी आत्महत्या उसके पति आदि के द्वारा उत्प्रेरित की गई है । जब विधि यह कहती है कि न्यायालय उस तथ्य की उपधारणा कर सकता है, तो यह न्यायालय के विवेकाधीन है कि वह ऐसे तथ्य को या तो साबित किए गए रूप में माने या ऐसा न करे, जो मामले की सभी अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करता है । क्योंकि न्यायालय पर इस उपधारणा पर कार्य करने के लिए कोई विवशता नही है, अतः

अपराधी न्यायालय को उसके विरुद्ध उपधारणा बनाने के विरुद्ध प्रेरित कर सकता है ।

30. किंतु भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन किसी अपराध के संबंध में विशेष स्थिति, जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध के संबंध में ऊपर बताई गई सुभिन्नता से प्रकट है, यह है कि पूर्ववर्ती के अधीन न्यायालय के पास ऊपर परिगणित दो वास्तविक स्थितियों की केवल स्थापना पर यह उपधारणा करने की कानूनी विवशता है कि अभियुक्त ने दहेज-मृत्यु की है । यदि कोई अपराधी उक्त पकड़ से बचना चाहता है तो उसको नासाबित करने का भार उस पर है । यदि वह उस उपधारणा का खंडन करने में असफल रहता है तो न्यायालय उस पर कार्य करने के लिए आबद्ध है ।

31. अब किसी ऐसे अपराधी का मामला लें, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन केवल एक आरोप की प्रतिरक्षा करने के लिए बुलाया गया था । सबूत का भार कभी उस पर अंतरित नहीं होता । यह हमेशा अभियोजन पर रहता है, जिसे सभी युक्तियुक्त संदेह से परे आरोप को साबित करना होता है । उक्त पारंपरिक विधिक संकल्पना अभी भी अपरिवर्तित है । ऐसे मामले में अभियुक्त उस समय तक प्रतीक्षा कर सकता है जब तक कि अभियोजन का साक्ष्य पूरा नहीं हो जाता है और तत्पश्चात् उसे यह दर्शित करना होता है कि अभियोजन उसके विरुद्ध उक्त अपराध साबित करने में असफल रहा है । ऐसी स्थिति में कोई अनिवार्य उपधारणा अभियोजन की सहायता के लिए नहीं आएगी । यदि ऐसा हो तो जब किसी अभियुक्त के पास भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध की कोई सूचना नहीं है, क्योंकि वह अकेले भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन केवल आरोप की प्रतिरक्षा कर रहा था, क्या यह घोर अन्याय का मार्ग प्रशस्त नहीं करेगा जब उसे वैकल्पिक रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 के अधीन सिद्धदोषी ठहराया जाता है और उसके अधीन

विहित गंभीर दंड का दंडादेश दिया जाता है, जो सात वर्ष के लिए कारावास के न्यूनतम दंडादेश का आदेश है ।

32. वह गंभीर परिणाम जो ऐसी स्थिति में अभियुक्त के लिए पूर्वगामी हो सकता है, एक उदाहरण द्वारा वर्णित किया जा सकता है । यदि किसी वधू की उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हत्या की जाती है और यह दर्शित करने का साक्ष्य है कि या तो पूर्व दिन या कुछ दिन पहले उसे उसके पति द्वारा दहेज की मांग के साथ तंग किया गया था तो ऐसा पति साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख की भाषा के आधार पर अपराध का दोषी होगा । किंतु यदि वास्तव में उसकी पत्नी की हत्या या तो किसी डाकू द्वारा या किसी आतंकवादी कार्य में किसी लड़ाकू द्वारा की गई थी, तो पति यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य दे सकता है कि उसका उसकी मृत्यु में कोई हाथ नहीं था । यदि वह सबूत के भार का निर्वहन करने में सफल होता है तो वह भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दोषसिद्ध ठहराए जाने के लिए दायी नहीं है । किंतु यदि पति को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोपित किया जाता है तो उस पर यह साबित करने के लिए कोई भार नहीं है कि उसकी पत्नी की उस प्रकार हत्या की गई थी क्योंकि उसके पास पारंपरिक प्रतिरक्षा हो सकती है कि अभियोजन उसके विरुद्ध हत्या का आरोप साबित करने में असफल रहा है और वह दोषमुक्ति के आदेश का दावा कर सकता है ।

33. उक्त उदाहरण किसी अभियुक्त पर पड़ने वाले परिणाम की गंभीरता को वर्द्धित करेगा यदि उससे केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप की प्रतिरक्षा करने के लिए कहा जाता है और वैकल्पिक रूप से उसे कोई सूचना दिए बिना भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दोषसिद्ध ठहराया जाता है, क्योंकि उसे विधि द्वारा उस पर डाले गए भार को नासाबित करने के लिए अवसर से वंचित किया गया है ।

34. ऐसी स्थिति में यदि विचारण न्यायालय यह पाता है कि अभियोजन भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मामला साबित करने में असफल रहा है किंतु भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन अपराध साबित हो गया है, तो न्यायालय को अभियुक्त को उक्त अपराध के संबंध में अपनी प्रतिरक्षा के लिए आगे आने के लिए बुलाना होगा । अभियुक्त को ऐसा कोई अवसर दिए बिना भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन किसी दोषसिद्धि का परिणाम न्याय का वास्तविक और घोर अन्याय होगा । यद्यपि कोई ऐसा मुद्दा आरोप में सम्मिलित नहीं किया गया था, जब न्यायालय उसको न्यायालय के प्रथमदृष्टया दृष्टिकोण के बारे में कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दोषसिद्ध ठहराए जाने के लिए दायी है, जब तक कि वह इस उपधारणा को नासाबित करने के लिए सफल नहीं होता है, सूचना देकर उसके भार का उन्मोचन करने के लिए उसे एक अवसर देता है, तो न्यायालय के लिए उपधारणा को नासाबित करने में उसके असफल रहने की घटना में उक्त अपराध की दोषसिद्धि के लिए आगे आना संभव होगा ।

35. चूंकि अपीलार्थी को उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन, ऐसा अवसर दिए गए बिना, सिद्धदोष ठहराया गया था, अतः हम न्याय के हित में उसको ऐसा अवसर देना आवश्यक समझते हैं । यह मामला विचारण न्यायालय में अपीलार्थी के विरुद्ध (अन्य दो अभियुक्त के विरुद्ध नहीं जिनकी दोषमुक्ति पर आक्षेप नहीं किया गया है) प्रतिरक्षा साक्ष्य के प्रक्रम से अग्रसर होना चाहिए । उसे यह सूचना दी गई है कि जब तक कि वह उस उपधारणा को नासाबित नहीं कर देता है तब तक वह भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दोषसिद्ध ठहराए जाने के लिए दायी है ।

2.11.2 **शांति** बनाम **हरियाणा राज्य,** 1991(1) एस.सी.सी. 371 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 304-ख और धारा 498-क पारस्परिक रूप से अनन्य

नहीं हैं । वे दो सुभिन्न अपराधों के बारे में हैं । धारा 304-ख के अधीन आरोपित और दोषमुक्त कोई व्यक्ति बिना आरोप विरचित किए धारा 498-क के अधीन, यदि ऐसा मामला बन जाता है, तो सिद्धदोष ठहराया जा सकता है । किंतु व्यवहार और प्रक्रिया की दृष्टि से और तकनीकी दोषों से बचने के लिए ऐसे मामलों में यह सलाह योग्य है कि दोनों धाराओं के अधीन आरोप विरचित किए जाएं । यदि अभियुक्त के विरुद्ध मामला साबित हो जाता है तो उसे दोनों धाराओं के अधीन सिद्धदोषी ठहराया जा सकता है किंतु धारा 304-ख के अधीन बड़े अपराध के लिए सारभूत दंडादेश दिए जाने की दृष्टि से धारा 498-क के अधीन कोई पृथक् दंडादेश दिए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

2.12 आकलन

पूर्वोक्त से, अब यह देखा जा सकता है कि पारंपरिक रूप से विवाह एक पवित्र संस्था रहा है । यह अभी तक भी वैसे ही बना हुआ है । तथापि गत अवधि में, दहेज एक सामाजिक बुराई के रूप में प्रकट हुआ है जिससे निर्दोष वधुओं की मृत्यु की संख्या में वृद्धि हुई है । इस प्रवृत्ति ने खतरनाक अनुपात और आयाम ग्रहण कर लिए हैं जिससे विधानमंडल के लिए इस मुद्दे पर आश्चर्य करने और दहेज-मृत्यु की विभीषिका से बचने के लिए युक्ति ढूंढ़ने के लिए पथ प्रदर्शन हुआ है । जहां वधू के मृत्यु के मामले ठीक-ठीक हत्या के अपराध की या दंड संहिता के अधीन किसी अन्य अपराध की अपेक्षाओं की पूर्ति करते हैं वहां दोषी व्यक्ति के विरुद्ध तद्नुसार कार्यवाही की जा सकती है । विधि हत्या के मामले में मृत्यु अनुशास्ति के लिए उपबंध करती है । यहां भी न्यायिक प्रवृत्ति विरले मामलों में से विरलतम में और न कि नैमित्तिक रूप से, मृत्यु अनुशास्ति देने की रही है । इस विषय पर निर्णयज विधि यह अवधारण करने के बारे में न्यायिक मार्गदर्शक सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से सामने लाती है कि क्या प्रस्तुत मामला विरले मामलों में से विरलतम के प्रवर्ग में आता है । यह उन मामलों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है जहां मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित कर दिया गया है । साधारणतया आजीवन दंडादेश का संपूर्ण जीवन तक विस्तार किया जा सकता है । तथापि विधि इस

बारे में अधिकथित कतिपय शर्तों के अधीन रहते हुए 20 वर्ष के निरोध के पूरा होने पर आजीवन सिद्धदोषों की निर्मुक्ति के लिए उपबंध करती है । उस समय की विद्यमान विधियों की अपर्याप्तता को देखा गया था जहां दहेज के कारण नववधुओं की मृत्यु के मामले स्पष्ट रूप से धारा 302 के अधीन नहीं लाए जा सके थे । तथापि परिस्थितियां ऐसी पाई गईं थीं जो उस मृत्यु की संदेहास्पद प्रकृति को दर्शित करती थीं, जो दहेज-मृत्यु की विभीषिका से प्रभावी रूप से बचने के लिए समुचित दंड का समर्थन करती थीं । तद्नुसार एक नये दहेज-मृत्यु के सारवान अपराध को उपधारणात्मक आधार पर, उपधारणा को खंडित करने का भार अपराधी पर डालते हुए, विरचित किया गया था । साक्ष्य अधिनियम का भी इस संबंध में कतिपय उपधारणाओं का उपबंध करने के लिए संशोधन किया गया था । धारा 304-ख में उपबंधित रूप में दहेज-मृत्यु का अपराध वही अपराध नहीं है जो धारा 302 के निबंधनानुसार हत्या का है । कोई मामला दोनों धाराओं के अंतर्गत आ भी सकता है और नहीं भी आ सकता है । जहां किसी अपराधी को एक अपराध से आरोपित किया जाता है वहां उसे दूसरे अपराध के लिए सिद्धदोषी ठहराया जा सकता है, यदि आरोपित अपराध साबित किए जाने में असफल हो जाता है किंतु दूसरे अपराध के संघटकों का प्राप्त साक्ष्य के आधार पर समाधान हो जाता है, परंतु यह तब जबकि इससे घोर अन्याय नहीं होता हो । विधि में ऐसे उपबंधों के होते हुए भी दहेज-मृत्यु की घटनाओं में कोई महत्वपूर्ण कमी नहीं आई है या उनका उपशमन नहीं हुआ है । अतः दहेज-मृत्यु के अपराध के लिए अधिक कठोर मृत्यु दंड के लिए मांग की जा रही है । चाहे ऐसी मांग में कोई सार है या नहीं, इस बारे में चर्चा आगे वाले अध्याय में की जाएगी ।

***

अध्याय 3

निष्कर्ष और सिफारिशें

3.1 सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य :

विभिन्न समाज अपराधों के बारे में विभिन्न रूपों में प्रतिक्रिया करते हैं और अपराध करने वाले अपनी-अपनी मूल्य प्रणाली पर और उस समय के विद्यमान जीवन-दर्शन पर निर्भर करते हैं । अपराधों के किए जाने के लिए कारण और अपराधियों की व्यक्तित्व संबंधी विशिष्टताएं इतनी भिन्न जटिल और अनगिनत हैं कि वे किसी विस्तृत वर्णन और समझे जाने के लिए उत्तरदायी नहीं है । अपराधियों को कभी-कभी जन्मजात अपराधी और मनोरोगी के रूप में और कभी-कभी परिस्थितियों के शिकार के रूप में देखा जाता है । यह **एलमर हुवर्ट जॉनसन** द्वारा बहुत सटीक रूप से वर्णित किया गया है जब उसने अपराध, सुधार और समाज में पृष्ठ 3 पर यह कहा कि किसी अपराधी को दैत्य के रूप में वर्णित किया जा सकता है, या शिकार किए गए गए पशु के रूप में अथवा पाश्विकता के असहाय पीड़ित के रूप में चित्रित किया जा सकता है । इसी प्रकार सामाजिक-आर्थिक कारणों को, अन्य बातों के साथ, अपराधों के किए जाने के लिए स्पष्टीकरण के रूप में आरोपित किया जाता है । धीरे-धीर अपराधों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण और उत्तरदायित्व को तथा उनके करने वालों को साधारणीकृत किया गया है और उनको विभिन्न सैद्धांतिक रूपरेखाओं में वर्गीकृत किया गया है । अपराधिकता के सिद्धांतों के द्विपरती प्रयोजन हैं : वे अपराधिक व्यवहार के बारे में विद्यमान सूचना को संसक्त, प्रणालीगत ढांचे में संगठित करने में सहायता करते हैं और वे खोजे जाने के लिए संभाव्य रूप से परिणामी मार्गदर्शन की ओर संकेत करके और आगे अनुसंधान के लिए दिशाएं बताते हैं । इसके अतिरिक्त अपराधिकता के सिद्धांत अपराध और अपचार को नियंत्रित करने, कम करने, समाप्त करने और निवारण करने का लक्ष्य रखने वाले कार्यक्रमों के लिए कुछ तार्किक आधार स्थापित करने में सहायता कर सकते हैं । (देखिए क्रिमिनोलॉजी

एंड क्राइम एंड इनट्रोडक्शन वाई हेरॉल्ड जे. बेटर एंड इरा जे. सिलवर मैन (1986) पृष्ठ 235) तद्नुसार हम दंडशास्त्र के कतिपय सिद्धांतों को प्रकट होते हुए देखते हैं जो संपूर्ण विश्व में करीब-करीब सभी विधिक आदेशों में विभिन्न डिग्रियों और अनुपात में अंतर्निहित हैं । इस प्रकार हमारी दंडात्मक पहुंच ऐसी है जो प्रकृति में पारंपरिक और अपने आयात और लागू होने में सार्वभौमिक है, जिसके द्वारा अपराधी को बुरे व्यक्ति के रूप में देखा जाता है और अपराधी को दंड प्रतिशोध के रूप में और अपराध के किए जाने से समाज के सदस्यों को भयोपरत करके समाज का संरक्षण करने के लिए भी दिया जाता है । तदुपरि चिकित्सीय मार्ग कहा जाने वाला एक दूसरा मार्ग भी है । इसके अनुसार कोई अपराधी परिस्थितियों का शिकार है । इस मार्ग में किसी अपराधी को उपचार की अपेक्षा करने वाले किसी बीमार व्यक्ति के रूप में देखा जाता है । इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि ऊपर निर्दिष्ट दोनों मार्गों में अपराधी आकर्षण का केंद्र हैं और उसे दो प्रतिकूल दृष्टिकोणों से देखा जाता है और इसलिए इन दोनों मार्गों में से प्रत्येक में भिन्न उपचार किया जाता है । इसके अतिरिक्त दूसरा सिद्धांत भी है जिसमें ध्यान अपराधी पर नहीं किंतु उन कारकों पर होता है जो अपराधी होने के लिए मार्गदर्शन करते हैं और जो अपराधों का निवारण करने की दृष्टि से ऐसे कारकों को हटाए जाने पर होता है । अतः इस मार्ग को निवारक मार्ग कहा जाता है । इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य सिद्धांतों का भी गत वर्षों में विकास हुआ है जो अपराधशास्त्र के भिन्न पहलुओं के बारे में है । कुछ ऐसे हैं जो उस रीति के बारे में हैं, जिसमें अपराधी के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए । उल्लेख किए जाने के लिए इनमें से कुछ चिरप्रतिष्ठित और सकारात्मक सिद्धांत जैसे प्रतिशोध सिद्धांत, उपयोगीकरण सिद्धांत, भयपरक सिद्धांत, ठीक करने वाले और सुधारात्मक सिद्धांत, पुनर्वासात्मक सिद्धांत, मानकतावादी सिद्धांत आदि हैं । इसके अतिरिक्त कुछ और हैं जो उन कारकों पर ध्यान देते हैं, जो अपराध को करने का मार्ग दर्शित करते हैं । उल्लेख करने के लिए इनमें से कुछ सामाजिक-आर्थिक सिद्धांत, समाजशास्त्रीय सिद्धांत, सामजिक-मनोवैज्ञानिक और मनःचिकित्सीय और जीव विज्ञान संबंधी और मानव विज्ञान संबंधी सिद्धांत है । इन सब मार्गों का सम्मिश्रण संपूर्ण विश्व में सभी विधिक पद्धतियों में पाया जाएगा, यद्यपि वह विभिन्न अनुपातों और डिग्रियों में हो सकता है । तथापि ये मार्ग

पारस्परिक रूप से पृथक् नहीं है बल्कि वे एक दूसरे के अनुपूरक हैं । ये सभी मार्ग अपराधशास्त्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में है और इस प्रकार आपराधिक न्यायशास्त्र को, विशेष रूप से दंडशास्त्र को, समेकित रीति से समझने के लिए और उनकी विवेचना के लिए आवश्यक हैं तथा निवारण और शुद्धि के माध्यम से अपराधों और दंड के संबंध में सावर्जनिक नीति बनाने में सहायता करते हैं ।

3.2 विभिन्न प्रकार के दंड

विभिन्न प्रकार के दंड विभिन्न अपराधों के करने के लिए दोषी पाए गए व्यक्तियों को दंड देने के लिए विधि के अधीन अनुज्ञेय हैं । उल्लेख करने के लिए इनमें से कुछ शारीरिक दंड, जुर्माना, संपत्ति का समपहरण और अधिहरण, निष्कासन, कारावास, मृत्यु दंड या मृत्यु दंडादेश, सुधारात्मक श्रम, अपराधी द्वारा क्षति के लिए प्रतिकर, लोकनिन्दा आदि हैं । इन बहुतों में से समुचित मंजूरी का चयन, जो विधि के अधीन अनुज्ञेय हो सकती है, दो प्रक्रमों पर उत्पन्न हो सकता है, एक विधायी प्रक्रम पर और दूसरा किसी प्रस्तुत मामले में न्याय के प्रशासन के प्रक्रम पर । पहला विधान में दिए गए अपराध के लिए दंड के निर्धारण से संबंधित है । वह किसी अपराध के लिए अधिकतम और न्यूनतम दंड अधिकथित कर सकता है । दूसरा प्रक्रम किसी प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए विधि में इस प्रकार विहित अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर किसी व्यष्टिक अपराधी को दंडित करने से संबंधित है । हम यहां पहले प्रक्रम से संबंधित हैं अर्थात् क्या भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख का दहेज-मृत्यु के अपराध के लिए मृत्यु दंड का उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए । इस समय यह धारा आजीवन कारावास और सात वर्ष के कारावास के न्यूनतम दंड के लिए उपबंध करती है । मृत्यु दंडादेश या मृत्यु दंड के विषय ने संपूर्ण विश्व में अंतहीन बहस को जन्म दिया है और जो एकमत सार्वभौमिक निष्कर्ष पर पहुंचने में असफल रही है । भारत ने अपनी कानूनी पुस्तक में मृत्यु दंडादेश को रहने दिया है । तथापि व्यवहार में इसका विरले मामलों में से विरलतम में बहुत कम उपयोग किया जाता है । इसके उपयोग को

पैशाचिक रूप में किए गए ऐसे गंभीरतम अपराधों तक, जो जनता की चेतना को विस्तृत रूप से सदमा पहुंचाने वाले हों, निर्वंधित करने की सुभिन्न प्रवृत्ति है ।

3.3 राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा सुझाव

गहरी जड़ जमाए हुए दहेज की बुराई से संबंधित मुद्दे को राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा एन.एस.सी. पूसा, नई दिल्ली के सिम्पोसिया हॉल में 22 नवंबर, 2005 को आयोजित कन्वेंशन में उठाया गया था । आयोग ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के अधीन दहेज-मृत्यु के लिए दंड में वृद्धि करने हेतु एक संशोधन का निम्नलिखित कारणों से प्रस्ताव किया था :–

(क) इस अपराध को हत्या के समक्ष रखने के लिए और किसी भी कल्पना से यह हत्या से कम गंभीर अपराध नहीं है ।

(ख) ऐसे जघन्य अपराधों में लिप्त होने वाले व्यक्तियों के मस्तिष्क में भय उत्पन्न करने के लिए अब यह अत्यधिक स्पष्ट हो गया है कि न तो दहेज प्रतिषेध अधिनियम और न भारतीय दंड संहिता के संशोधित उपबंध जनता को भयभीत कर सकते हैं और इसलिए इनको सफलता नहीं प्राप्त हो सकी । समिति ने पाया कि इस उपबंध में उक्त विसंगतियों के कारण विधि अपना उद्देश्य पूरा करने में असफल रही है । उपर्युक्त परिवर्तनों को सम्मिलित करके विधि को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है ।

(ग) इसके अतिरिक्त उपधारणा की समय सीमा में भी वृद्धि की जा सकती है क्योंकि सात वर्ष बहुत छोटा समय है और बहुधा अपराध को पूर्व नियोजित रीति से निष्पादित किया जाता है ।

(घ) न्यूनतम दंड को सात वर्ष से बढ़ाकर दस वर्ष किया जाना चाहिए ।

3.4 मृत्यु दंड

मृत्यु दंड, जिसे मृत्यु अनुशास्ति के रूप में भी जाना जाता है, राज्य द्वारा मृत्यु से दंडनीय अपराधों के रूप में ज्ञात अपराधों के लिए दंड के रूप में दोषसिद्ध अपराधी को मृत्यु दंड देना है । यह अपराध के लिए दंड के रूप में मृत्यु की अनुशास्ति का सम्यक् विधिक प्रक्रिया द्वारा दंड देना है । मृत्यु दंड का विचार बड़ा महत्वपूर्ण है और मानव जाति की प्रथम संकल्पना का एक भाग है । यह अपराधों और साथ ही राजनीतिक शत्रुओं को दंड देने के अत्यधिक पुरातन और सामान्यतया उपयोग किए गए रूपों में से एक है । आज कल प्रचलित विश्वव्यापी परिदृश्य में अधिकांशतः यूरोपीय (बेलारूस को छोड़कर सभी), लैटिन अमेरिकन, बहुत से पैसेफिक राज्यों (आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और ईष्ट टाइमर को सम्मिलित करते हुए) और कनाडा जैसे देशों ने मृत्यु दंड को समाप्त कर दिया है । अप्रजातांत्रिक राष्ट्रों के बीच भी यह पद्धती विरल है किंतु महत्वपूर्ण नहीं है । सभी अपराधों के लिए मृत्यु दंड समाप्त करने वाले हाल के देशों में 2006 में फिलिपीन ने और फरवरी, 2007 में फ्रांस ने इसे समाप्त कर दिया है । फिर भी बहुत से सभ्य राष्ट्र इस दंडात्मक परंपरा को शरण दिए हुए हैं, उनमें से मुख्य यूनाइटेड स्टेट्स, ग्वेटमाला और अधिकांश कैरिबीयन और साथ ही कुछ एशिया में प्रजातंत्र है (अर्थात् जापान और भारत) और अफ्रीका (अर्थात् बोत्सवाना और जाम्बिया) ।

3.5 भारतीय परिदृश्य

3.5.1 भारत में, विचार-विमर्श की गई दांडिक अनुशास्ति को धाराओं की परिधि के भीतर ही अधिरोपित किया जा सकता है । भारतीय दंड संहिता की धारा 121 (राज्य के विरुद्ध युद्ध करना), धारा 132 (वास्तव में किए गए विद्रोह का दुष्प्रेरण), धारा 194 (ऐसा मिथ्या साक्ष्य देना या गढ़ना जिस पर कोई निर्दोष व्यक्ति मृत्यु प्राप्त करे), धारा 302 (हत्या), धारा 305 (किसी अवयस्क या जड़ या उन्मत व्यक्ति की आत्महत्या का दुष्प्रेरण), 307 (आजीवन सिद्धदोष द्वारा हत्या का प्रयास) और 396 (हत्या सहित डकैती) । आगे, मृत्यु अनुशास्ति के लिए मार्गदर्शित करने वाले ठोस दायित्व के मामले धारा 34 और धारा

109-111 तक के अधीन भी उद्भूत हो सकते हैं । दंड संहिता के अतिरिक्त, बहुत सी अन्य विधियां जैसे विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 ; स्वापक औषधि मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 ; आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 ; आतंकवादी विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (जिसे निर्सित किया जा चुका है) ; आदि हैं, जो मृत्यु दंड के अधिरोपण के लिए उपबंध करती है ।

3.5.2 माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह नियम दिया है कि प्रत्येक मृत्यु अनुशास्ति असंवैधानिक नहीं है, यद्यपि उसको कार्यान्वित करने के तरीकों में से कुछ अन्यथा हो सकते हैं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मृत्यु दंडादेश का निष्पादन करने में विलंब उसे आजीवन कारावास में लघुकरण किए जाने का हकदार बनाता है किंतु पश्चात्वर्ती उसने अपने विनिश्चय को उलट दिया । विशिष्ट रूप से इस दांडिक दंड के भयपरक मूल्य को विभिन्न न्यायविदों द्वारा विभिन्न मामलों में मान्यता दी गई है । (देखिए **जगमोहन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य,** ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 947 ; **राजेन्द्र प्रसाद** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य,** ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 916 ; **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य,** ए.आई.आर 1980 एस. सी. 898 ; **माच्छी सिंह** बनाम **पंजाब राज्य,** ए.आई.आर 1983 एस.सी. 957)

3.5.3 दो विरोधी दृष्टिकोण हैं जिन्हें विस्तृत रूप से दो विचारधाराओं में वर्गीकृत किया जा सकता है अर्थात् प्रतिधारण करने वाले (मृत्यु दंड दिए जाने का समर्थन करने वाले) और समाप्त करने वाले (मृत्यु दंड दिए जाने का विरोध करने वाले) । प्रतिधारण करने वाले की विचारधारा के अधीन कार्य करते हुए, उपयोगितावादी विचारधारा के व्यक्ति बहस करते हैं कि मृत्यु दंड अपराधी का अपराध की पुनरावृत्ति करने से निवारण करता है और भविष्य के अपराधियों के लिए भयपरतिकारी रूप में कार्य करता है । तद्नुसार, सुधारात्मक सिद्धांतवादी अधिकथित करते हैं कि न्याय के आधाशिलात्मक विषय के रूप में अपराध को धिग्दंड दिया जाना चाहिए और वह कारित क्षति के समतुल्य होना चाहिए । अभी हाल में, मृत्यु के प्रतिपादक इस बात पर जोर दे रहे हैं कि मृत्यु अनुशास्ति उनके भाग पर

आपराधिक आचरण को निरुत्साहित करती है, जो अपराधियों के साथ व्यवहार करने के इस तरीके की विद्यमानता और भयानकताओं से परिचित हैं ।

3.5.4 कुछ प्रसिद्ध मृत्यु दंड विरोधी जैसे मोनटेस्क्यू, वोल्टायर बेकारिया, आदि ने बहस की है कि चूंकि शास्ति विखंडनीय है अतः इसका अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए ।

3.5.5 अधिकांश मृत्यु अनुशास्ति विरोधी संगठन, अत्यधिक प्रसिद्ध एमनेस्टी इंटरनेशनल, अपनी विचारधारा को मानव अधिकारों संबंधी तर्कों पर आधारित करते हैं । मृत्यु अनुशास्ति विरोधी विद्वान् दावा करते हैं कि समाज किसी व्यक्ति का जीवन लेकर पलायनवादी प्रवृति को खोजती है । तथापि, भारत में, इस संबंध में पर्याप्त रक्षोपाय दंड देने संबंधी शक्तियों की रक्षा करते हैं । यदि उच्च न्यायालय अपराधी को विचारण न्यायालय की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील पर मृत्यु दंड देता है तो उच्चतम न्यायालय को अपील करने का अधिकार स्वतः उद्भूत हो जाता है । इसके अतिरिक्त दोषित कैदी यह अधिकार प्रतिधारित करता है कि वह अपने दंडादेश को संबंधित राज्य के राज्यपाल से, जिसका भारत के संविधान में उपबंधित रूप में भारत के राष्ट्रपति द्वारा अनुसमर्थन किया गया हो, लघुकृत करा ले, निलंबित करा ले, उसका परिहार करा ले, प्रविलंबन करा ले, विराम करवा ले या उसे माफ करवा ले ।

3.5.6 कदाचित मृत्यु दंड के विरुद्ध जनभावनाओं की हाल की प्रवृति इस विस्तृत अनुभव का प्रतिनिधित्व करती है कि समाज के लिए सुधार दंड से अधिक महत्वपूर्ण है ।

3.5.7 यह ध्यान में रखना उपयुक्त हो सकता है कि इस आयोग ने मृत्यु दंड के विभिन्न पहलुओं के बारे में अपनी 35वीं रिपोर्ट में सितंबर, 1967 में ब्योरेवार चर्चा की है । यहां विचाराधीन प्रश्न का उत्तर सिद्धांततः उस रिपोर्ट में पाया जा सकता है, यद्यपि इस प्रश्न के बारे में दहेज-मृत्यु के प्रति निर्देश से विनिर्दिष्ट रूप से कार्य नहीं किया गया था । उस रिपोर्ट के पैरा 77 में यह कहा गया था कि प्रथमतः मृत्यु से दंडनीय अपराध (ऊपर पैरा 69 में सूचीबद्ध) हो सकता है कोई समान तत्व दर्शित न करें, किंतु उनकी घनिष्ठ

विवेचना प्रकट करती है कि इन सभी अपराधों को जोड़ने वाला एक धागा है अर्थात् यह सिद्धांत की मानव जीवन की पवित्रता का अवश्य संरक्षण किया जाना चाहिए । यह खतरे के प्रति जीवन की इच्छा या जीवन का इच्छापूर्ण प्रकटन है जो मृत्यु दंडादेश के उपबंध के लिए आधार का गठन करता हुआ मालूम होता है । आयोग ने इस सिद्धांत को इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन किसी अन्य अपराध को मृत्यु दंड से दंडनीय अपराध बनाया जाना चाहिए, लागू किया था । निम्नलिखित अपराधों पर इस संबंध में आयोग द्वारा विचार किया गया था, अर्थात् खाद्य और औषधियों का अपमिश्रण, सेना के विरुद्ध अपराध, आग लगाना, गुप्तचरी, अपहरण और दुष्प्रेरण, उपेक्षा से हत्या, बलात्संग, तोड़फोड़, तस्करी और राजद्रोह (पैरा 462 से 540 तक पृष्ठ 156-179 पर) संबंधी अपराध । आयोग ने यह सिफारिश नहीं की कि भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन कोई अन्य अपराध मृत्यु से दंडनीय होना चाहिए । (पृष्ठ 356 पर मुख्य निष्कर्षों का संक्षेप और सिफारिश का पैरा 3(ख)) इन निष्कर्षों पर पहुंचते हुए आयोग ने यह पुनः दोहराया कि मानव जीवन के इच्छापूर्ण अपमान के मुख्य सिद्धांत को, जो विद्यमान मृत्यु-दंड संबंधी अपराधों के लिए मृत्यु दंडादेश का आधार है, मस्तिष्क में रखना होगा और इस प्रश्न की परीक्षा की कि क्या विद्यमान विधि पर्याप्त नहीं है । यदि वह अपर्याप्त पाई जाती है तो कोई संशोधन करने से पूर्व यह विचार करना होगा कि क्या कोई निश्चित सुधार विकसित किया जा सकता है जो इस सिद्धांत के अनुरुप होते हुए इन कार्यों के करने के क्षेत्र को, जिन्हें मृत्यु दंड बनाए जाने के लिए प्रस्तावित किया गया है, स्पष्ट रूप से परिभाषित कर सकता हो । (देखिए पैरा 476 पृष्ठ 160 पर) इस प्रकार आयोग ने, अन्य बातों के साथ, यह कहा कि जहां कोई अपमिश्रण या आग लगाने का कार्य मृत्यु कारित करता है और हत्या से संबंधित धारा 300 की शर्तों का : विशेष रूप से मानव चेतना के बारे में, समाधान हो जाता है तो उस मामले के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 300/302 के अधीन कार्रवाई की जा सकती है और मृत्यु दंडादेश विधि के अधीन दिया जा सकता है । यदि ऐसा नहीं है तो ऐसे कार्य को मृत्यु से दंडनीय अपराध बनाना भारतीय दंड संहिता की स्कीम के अनुरूप

नहीं होगा । (देखिए पैरा 463-466 को पृष्ठ 156-157 पर) उसी अनुरूपता को दहेज संबंधी मृत्यु के मामलों में लागू करते हुए, यदि धारा 300 में हत्या की शर्तों का समाधान हो जाता है तो अपराधी को निश्चित रूप से धारा 302 के अधीन मृत्यु दंडादेश देने के लिए विभिन्न मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित माप दंडों के अनुसार जिन में से सबसे अधिक पवित्र माप दंड 'विरले मामलों में से विरलतम' की उक्ति है, मृत्यु दंडादेश दिया जा सकता है । यदि नहीं तो दहेज संबंधी मृत्यु को मृत्यु से दंडनीय अपराध बनाना भारतीय दंड संहिता की स्कीमों के अनुरूप नहीं हो सकता ।

3.6 दहेज मृत्यु बनाम हत्या

3.6.1 दहेज मृत्यु हत्या का मामला हो सकती है या नहीं भी हो सकती है । जहां वह हत्या का मामला है, मृत्यु दंडादेश समुचित मामलों में दिया जा सकता है । किंतु जहां ऐसा नहीं है, वहां मृत्यु दंडादेश का अधिरोपण भारतीय दंड संहिता में मृत्यु से दंडनीय अपराधों में अंतर्निहित मुख्य सिद्धांत के अनुरूप नहीं हो सकता । यह देखा जा सकता है कि 1984 में दहेज मृत्यु संबंधी धारा 304-ख के अंतःस्थापन के पूर्व भी ऐसे दहेज मृत्यु के मामले हुए थे जिन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 300 के अधीन हत्या के लिए अभियोजित किया गया था । इसी प्रकार, **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** बनाम **लक्ष्मण कुमार और अन्य** (ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 250) वधू जलाने का मामला था जिसमें विचारण न्यायालय ने अभियोजन मामले को स्वीकार किया था और उसे नृशंस दहेज हत्याओं में से एक मानते हुए प्रत्यर्थियों में से प्रत्येक को अर्थात् पति, सास और विधित भाई को मृत्यु दंडादेश दिया था । तथापि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को किसी सुधा को आग लगाकर जला डालने के हत्या के आरोप से दोषमुक्त कर दिया । अपील में उच्चतम न्यायालय ने भागतः अपील को मंजूर किया । निर्णय के पैरा 47 में न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किया :

> "47. विचारणार्थ अगला सुसंगत पहलू यह है कि अधिरोपित किए जाने के लिए क्या उचित दंड होना चाहिए । विद्वान् विचारण न्यायाधीन ने मृत्यु दंड अधिरोपित

करना उचित समझा था । दोषमुक्ति ने बीच में बाधा डाली और उस समय से करीब-करीब दो वर्ष व्यतीत हो गए हैं जब प्रत्यर्थियों को दोषमुक्त किया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा स्वतंत्रता प्रदान की गई थी । वधू जलाने के यथोचित मामलों में मृत्यु दंडादेश अनुचित नहीं हो सकता (इस बात पर जोर दिया) किंतु मामले के तथ्यों में और विशेष रूप से उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने के पश्चात् की स्थिति के कारण और समय बीत जाने के कारण, हम यह नहीं समझते हैं कि दोष के निष्कर्ष के आवश्यक संसर्गी के रूप में मृत्यु दंडादेश को प्रत्यावर्तित करना उचित होगा । हम तद्नुसार दोनों अपीलें भागतः मंजूर करते हैं और निदेश देते हैं कि दो प्रत्यर्थी, श्रीमती शकुंतला और लक्ष्मण कुमार आजीवन कारावास से दंडादिष्ट होंगे । सुभाष के विरुद्ध दोनों अपीलें खारिज की जाती हैं और उसकी दोषमुक्ति बनाए रखी जाती है । विचारण न्यायाधीश द्वारा इस निर्णय को यथासंभव शीघ्र प्रभावी करने के लिए कदम उठाए जाएंगे । (पृष्ठ 266 पर)''

3.6.2 **श्रीमती लिच्छम देवी** बनाम **राजस्थान राज्य,** ए.आई.आर. 1988 एस. सी. 1785 एक दूसरा दहेज मृत्यु का मामला था जो भारतीय दंड संहिता में धारा 304-ख के अंतःस्थापन के पूर्व उद्भूत हुआ था । इस मामले में विचारण न्यायालय ने अपराधी को दोषमुक्त किया था किंतु उच्च न्यायालय ने उसकी दोषमुक्ति को उलटते हुए, मृत्यु दंडादेश दिया । अपील में उच्चतम न्यायालय ने अपराधी के दोष के बारे में नीचे के न्यायालयों की दो रायों को ध्यान में रखते हुए मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में उपांतरित कर दिया । इस संबंध में न्यायालय द्वारा दिए गए निम्नलिखित संप्रेक्षणों के प्रति निर्देश करना समीचीन होगा ।

''15. हमारे सामने मामला मृत्यु कारित करने वाली आकस्मिक अग्नि का नहीं है । यह निश्चित रूप से ''किसी के द्वारा अग्नि से जलाने वाला'' मामला है । मृतक को जला दिया गया था यह विवाद में नहीं है । यह वधू को जलाने वाला मामला है । राज्य (**दिल्ली प्रशासन** बनाम **लक्ष्मण कुमार,** 1985 सप्ली. (2)

एस.सी.आर. 898, पृष्ठ 931 : ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 250, पृष्ठ 266 पर) में न्यायालय ने कहा है कि वधू जलाने के मामले में, मृत्यु दंडादेश अनुचित नहीं हो सकता, हम इससे सहमत हैं । उन व्यक्तियों को, जो ऐसे बर्बर अपराध को बिना किसी मानवीय विचारण के करते हैं, चरम सीमा वाली शास्ति दी जानी चाहिए । किंतु विद्यमान मामले में, हम नहीं समझते हैं कि उच्च न्यायालय अपराधी - अपीलार्थी को मृत्यु दंडादेश देने में न्यायोचित था । 1977 में उसे विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया था । 1985 में उच्च न्यायालय ने उसकी दोषमुक्ति को उलट दिया और उसे चरम सीमा वाली अनुशास्ति दी । यह आठ वर्ष के बीत जाने के पश्चात् हुआ था । जब अपराधी के दोष के बारे में दो न्यायालयों की दो राय है, तो साधारणतया उचित दंडादेश मृत्यु नहीं होगी किंतु आजीवन कारावास होगा । इससे भिन्न इस प्रकार का कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी ने पुष्पा पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उस को आग लगाई थी । अवश्य ही वहां और व्यक्ति भी होंगे जो एक साथ मिल गए थे और जिन्होंने एक साथ षडयंत्र किया था तथा हत्या की थी । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वे न्यायालय के समक्ष नहीं है । उच्च न्यायालय के निर्णय से यह स्पष्ट है कि मृत्यु दंडादेश देने का विनिश्चय गुस्से से अधिक किंतु कारणों पर आधारित कम है । न्यायिक विवेक, भावनाओं और आक्रोश द्वारा प्रभावित नहीं होने दिया जाना चाहिए ।

3.6.3 **पंजाब राज्य** बनाम **अमरजीत सिंह**, ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 2013 एक दूसरा धारा 304-ख के पूर्व का दहेज-मृत्यु का मामला है जहां अपराधी को दोषसिद्ध ठहराया गया था और आजीवन कारावास से, दहेज की मांग को पूरा न करने के लिए अपनी पत्नी को जलाने के लिए, दंडादिष्ट किया गया था ।

3.6.4 **सुबेदार तिवारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**, ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 737 वधू जलाने का दूसरा मामला है, जहां उच्च शिक्षा प्राप्त पत्नी अपने विवाह के 9 माह की लघु

अवधि के भीतर जलकर अप्राकृतिक मृत्यु से मर गई थी । यद्यपि यह दहेज मृत्यु नहीं थी फिर भी यह मामला इस कारण से सुसंगत है कि पति को अभियोजित किया जा सकता था और धारा 302 के अधीन ऐसी अप्राकृतिक मृत्यु के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जा सकता था, यदि दुर्घटना और आत्महत्या को तथ्यों द्वारा अलग किया जा सकता ।

3.6.5 **पनाकांति संमपथराव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** (2006) 9 एस.सी.सी. 658 ऐसा मामला है जहां अपराधी की भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क, धारा 302 और धारा 304-ख के अधीन तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और धारा 4 के अधीन अपराधों के करने से आरोपित किया गया था । विचारण न्यायालय ने धारा 302 के अधीन हत्या के अपराध से उसे दोषमुक्त कर दिया किंतु शेष मुद्दों पर उसे दोषी ठहराया । उसे धारा 304-ख के अधीन आजीवन कारावास से, अन्य आरोपों के अधीन दिए गए दंड के अतिरिक्त, दंडादिष्ट किया गया था । अपील में न्यायालय ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी पाया । इसकी उच्चतम न्यायालय द्वारा भी पुष्टि कर दी गई ।

3.6.6 **वजीरचंद और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य,** ए.आई.आर. 1989 एस. सी. 378 दहेज-मृत्यु का दूसरा मामला है जहां अभियुक्त व्यक्तियां, पति और ससुर के विरुद्ध आत्महत्या का दुष्प्रेरण करने के लिए धारा 107 के प्रति निर्देश से धारा 306 के अधीन कार्यवाही की गई थी किंतु उन्हें इस आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया क्योंकि आत्महत्या साबित नहीं की जा सकी । फिर भी उन्हें इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि दहेज के लिए तंग करना साबित हो गया था, धारा 498-क के अधीन दोषसिद्ध ठहराया गया ।

3.6.7 **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **अशोक कुमार श्रीवास्तव,** ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 840 दहेज के लिए वधू को जलाने का एक दूसरा मामला है जहां लगभग 25 वर्ष की आयु की युवा स्त्री अपने विवाह के एक वर्ष से भी कम समय के भीतर जलने से मर गई । तीन अभियुक्तों को विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के

अधीन आरोपित किया गया था और सिद्धदोष ठहराया गया था तथा आजीवन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया गया था । तथापि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया क्योंकि कुछ अभियोजन साक्ष्यों की विश्वसनीयता संदेहास्पद थी, यद्यपि साधारणतया उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 336 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते समय किसी दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करने में धीमी गति से अग्रसर होता है किंतु इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने पाया कि उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप घोर अन्याय हुआ था । अतः न्यायालय को यह संभव नहीं लगा कि वह किसी ऐसे मामले में, जहां भयानक अपराध किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप मां बनने वाली युवा स्त्री की मृत्यु हुई थी, हस्तक्षेप करने से इंकार करे । तदनुसार उच्चतम न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए दोषसिद्धि को और विचारण न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश को प्रत्यावर्तित कर दिया ।

3.6.8 दहेज के अभिशाप ने **कुंडुला** वाले **सुब्रह्मण्यम्** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** (1993) 2 एस.सी.सी. 684 में, एक दूसरी पीड़ित की जान ली जहां मृतक **कुंडुला कोटि नागवानी** के पति और सास को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया था और आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया था । इस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए निम्नलिखित संप्रेक्षणों के प्रति निर्देश करना समीचीन होगा :

> "25. हाल में युवा निर्दोष वधुओं को तंग करने, यंत्रणा देने, उनकी दुष्प्रेरित आत्महत्याओं और दहेज मृत्यु से संबंधित मामलों में भयोत्पादक वृद्धि हुई है । यह युवा वधुओं के प्रति हिंसा और शोषण का बढ़ता हुआ संप्रदाय, यद्यपि जब कभी कोई घटना होती है, सभ्य समाज को सदमा पहुंचाता रहता है किंतु वह समाप्त न होकर बराबर बना हुआ है । लगातार सहनशीलता तथा "जियो और जीने दो" की भावना के आधारी मानवीय मूल्यों का क्षय हो रहा है । शिक्षा की कमी और स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता ने लालची अपराध करने वालों को उत्साहित किया है । यह अत्यधिक विक्षुब्ध करने वाला और दुःखद है कि अधिकांश ऐसे रिपोर्ट किए गए मामलों में यह स्त्री ही है जो युवा स्त्री के विरुद्ध ऐसे अपराधों में केंद्रीय भूमिका

निभाती है जैसे इस मामले में पति ने या तो मूकदर्शक के रूप में या अपराध में सक्रिय भागीदार के रूप में, अपनी वैवाहिक बाध्यताओं का घोर अपमान करते हुए कार्य किया । बहुत से मामलों में यह देखा गया है कि पति विवाह के पश्चात् भी 'मां का बच्चा' बना रहता है और ऐसा प्रतीत होता है कि उस प्रक्रम पर भी उसकी नाभीय नाल नहीं कटी है ।''

3.6.9 **कैलाश कौर** बनाम **पंजाब राज्य** (1987) 2 एस. सी. सी. 631 सारे शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़कर और आग लगाकर बर्बर प्रक्रिया द्वारा युवा पत्नी की क्रूर हत्या का दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण है जो अधिक दहेज के निष्कर्षण के लिए शारीरिक और मानसिक रूप से तंग करने की लंबी प्रक्रिया के परिणाम के रूप में सामने आया था । अभियोजन का मामला यह था कि ननद ने मृतक को पकड़ लिया और सास ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और उसको आग लगा दी । उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ''जब कभी ऐसे मामले न्यायालय के समक्ष आते हैं और अपराध युक्तियुक्त संदेह से परे अभियुक्त को लाता है तो यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह उसके साथ अत्यधिक कठोर रीति से व्यवहार करे और विधि द्वारा विहित अधिकतम अनुशास्ति दे जिससे कि वह ऐसे समाज विरोधी अपराध करने से दूसरे व्यक्तियों को भयभीत कर सके ।

3.7 दहेज मृत्यु मामलों में न्यायालयों की भूमिका

3.7.1 सामूहिक चेतना की जागृति आज की आवश्यकता है । हृदय और दृष्टिकोण का परिवर्तन है जिसकी आवश्यकता है । यदि मनुष्य को दूसरों के साथ अपना सामंजश्य पुनः प्राप्त करना है और पारस्परिक प्यार, विश्वास और समझ द्वारा घृणा, लालच, स्वार्थ को प्रतिस्थापित करना है और आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना है तो इस घातक सामाजिक बुराई की प्राकृतिक मृत्यु के रूप में समाप्त हो जाने की संभावना केवल स्वप्न नहीं रह सकती । विधानमंडल ने स्थिति की गंभीरता का अनुभव करते हुए विधियों का संशोधन किया है और ऐसे मामलों में कठोर दंडों के लिए उपबंध किया है और वधुओं की, उनके विवाह के प्रथम सात वर्षों के भीतर, अप्राकृतिक मृत्यु के मामलों में अपराधी के विरुद्ध

उपधारणाओं को करने की भी अनुज्ञा दी है । दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 में अधिनियमित किया गया था और उसे समय-समय पर संशोधित किया गया है किंतु सामाजिक विधान के इस टुकड़े ने, सामाजिक बुराई की बढ़ती हुई विभीषिका को दृष्टि में रखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि अपने प्रयोजन की अधिक पूर्ति नहीं की है, क्योंकि दहेज मांगने वालों को कठिनता से दंड के लिए सामने लाया जाता है और अभिलिखित की गई दोषसिद्धियां और भी कम हैं । विधियां इस बुराई से लड़ने में पर्याप्त नहीं हैं । स्त्रियों को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षा देने के लिए एक विस्तृत सामाजिक आंदोलन की, इस विभीषिका पर विजय पाने के लिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, जहां स्त्रियां अभी भी बड़े पैमाने पर अशिक्षित हैं और अपने अधिकारों के बारे में कम जानती हैं तथा शोषण का आसानी से शिकार हो जाती हैं, आवश्यकता है । न्यायालयों की भूमिका, ऐसी परिस्थितियों में अधिक महत्व प्राप्त कर लेती है और यह आशा की जाती है कि न्यायालय ऐसे मामलों से अधिक वास्तविक रीति से निपटेंगे और अपराधियों को प्रक्रिया संबंधी तकनीकियों के कारण या साक्ष्य में महत्वहीन कमियों के कारण बचने की अनुज्ञा नहीं देंगे क्योंकि इस तरह अपराधियों को प्रोत्साहन मिलेगा और अपराध से पीड़ित, अपराधियों को दंड न मिलने से, पूर्ण रूप से हतोत्साहित हो जाएंगे । न्यायालयों से स्त्रियों के विरुद्ध अपराध अंतर्वलित करने वाले मामलों में संवेदनशील होने की आशा की जाती है । इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा किया गया दोषमुक्ति का अधिकतम विचारण न्यायालय के भाग पर संवेदनशीलता की कमी का यथोचित उदाहरण है । उसने केवल कल्पनाओं और धारणाओं के आधार पर दोषमुक्ति का अधिमत अभिलिखित किया और साक्षियों के साक्ष्य को पूर्ण रूप से अपर्याप्त और महत्वहीन कारणों से नहीं माना । उसने मामले के महत्वपूर्ण कारकों की उन पर विचार-विमर्श किए बिना उपेक्षा की । (देखिए **कुंडुला** वाला **सुब्रह्मण्यम्** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** (1993) 2 एस.सी.सी. 684)

3.7.2 **कैलाश कौर** बनाम **पंजाब राज्य** (1987) 2 एस.सी.सी. 631 में, अवतार सिंह, पति, कैलाश कौर, सास और महिन्दर कौर, ननद को अमनदीप कौर, मृतक को आग जलाकर मारने के लिए धारा 302 के अधीन विचारण के लिए रखा गया था । विचारण न्यायालय

ने पति को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त कर दिया, किंतु कैलाश कौर और महिन्दर कौर को धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराया और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया । अपील में उच्च न्यायालय ने कैलाश कौर की दोषसिद्धि की पुष्टि कर दी किंतु महिन्दर कौर को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त कर दिया । जब यह मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया, तो उसने कहा, ''हमें उच्च न्यायालय के विनिश्चय की वैधता, औचित्य और शुद्धता के बारे, जहां तक उसने महिन्दर कौर को संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त कर दिया है, बहुत गंभीर संदेह है । किंतु चूंकि राज्य ने कोई अपील नहीं की है, हमसे उस पहलू के बारे में और आगे जाने के लिए नहीं कहा गया है । जहां तक कैलाश कौर की दोषसिद्धि का संबंध है, न्यायालय ने अपना दुख प्रकट किया कि ''सत्र न्यायाधीश ने इस मामले को विधि के अधीन अधिकतम अनुशास्ति देने के लिए उचित मामले के रूप में नहीं माना और यह कि राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दंडादेश की वृद्धि के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए थे ।''

3.7.3 इस मामले के सिरे पर लगे संपादकीय टिप्पणों के प्रति निर्देश करना समीचीन होगा, जो यथा निम्नलिखित हैं :-

[संपादक : इस मामले में पहली बार नहीं है कि उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में ''दहेज के निष्कर्षण के लिए शारीरिक रूप से और मानसिक रूप से तंग करने और यातना देने की लंबी प्रक्रिया के परिणाम के रूप में ..... युवा पत्नियों की विभत्स हत्या'' के अपराधियों को मृत्यु दंडादेश दिए जाने की प्रशंसा की है ।] न्यायालय की तीन न्यायाधीश वाली न्यायपीठ ने न्यायमूर्ति ठक्कर के माध्यम से बोलते हुए **माच्छी सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** (1983) 3 एस.सी.सी. 470 ; 1983 एस.सी.सी. (क्रिमि.) 681 में, विभिन्न परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया था जिन्हें 'विरले मामलों में से विरलतम' के रूप में माना जा सकता था, जिनमें भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष ठहराए गए अपराधी को अवश्य ही मृत्यु दंड से दंडित किया जाना चाहिए । 'अपराध की असामाजिक और सामाजिक रूप से घृणास्पद प्रकृति' प्रवर्ग के अधीन वर्णित परिस्थितियों

में से एक 'वधू को जलाने के मामले' थे, और जिन्हें 'दहेज-मृत्यु के रूप में जाना जाता है' या जब हत्या एक बार पुनः दहेज का निष्कर्षण करने के लिए पुनः विवाह करने या आकर्षण के कारण दूसरी स्त्री से विवाह करने के लिए की जाती है । न्यायालय ने अनुभव किया कि ऐसे मामलों में समाज की ''सामूहिक चेतना'' को इस प्रकार सदमा पहुंचता है कि वह न्यायिक शक्ति केंद्र के धारकों से मृत्यु शास्ति बनाए रखने की वांछनीयता के बारे में या अन्यथा उनकी व्यक्तिगत राय को ध्यान में रखे बिना मृत्यु अनुशास्ति देने की आशा करती है ।'' (एस.सी.सी. पृष्ठ 487-88, पैरा 32 और 35)

ऐसे वधूओं के हत्यारों को भयपरतिकारी दंड देने के लिए न्यायालय की लगातार चिंता के होते हुए भी प्रस्तुत मामले में सत्र न्यायालय ने और साथ ही उच्च न्यायालय ने मृतक पीड़ित की अपराधी सास के लिए आजीवन कारावास के दंडादेश को अधिमान दिया । उच्चतम न्यायालन ने उसकी पुष्टि कर दी, यद्यपि तथ्य चरम सीमा की शास्ति के लिए मांग करते थे । यह देश के सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालयों की सामाजिक-विधिक बाध्यता है कि वे वधू की हत्या करने वालों के ऐसे मामले में मृत्यु दंड दें जिससे कि उच्चतम न्यायालय के परमादेश के अनुरूप भयपरतिकारी प्रभाव उत्पन्न हो सके ।

वर्तमान मामले में दूसरी विच्छुब्धकारी बात साहसहीन अपराध के दुष्प्रेरक अर्थात् मृतक की ननद की दोषमुक्ति है, जिसने मृत्युकालिक कथन के अनुसार मृतक को पकड़ लिया था जबकि अपीलार्थी सास ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसको आग लगाई थी । यद्यपि विचारण न्यायालय ने उसको भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध ठहराया था, किंतु उच्च न्यायालय ने संदेह के लाभ के आधार पर उसे दोषमुक्त कर दिया । उच्चतम न्यायालय ने इस बारे में ''उच्च न्यायालय के विनिश्चय की वैधता, औचित्य और शुद्धता के बारे में गंभीर संदेह प्रकट किए किंतु वह असहाय था क्योंकि राज्य ने उसकी दोषमुक्ति के विरुद्ध कोई अपील नहीं की थी । इस प्रकार एक गंभीर अपराध का दुष्प्रेरक राज्य प्रशासन की ओर से गंभीर लापरवाही के कारण दंड से

बच गया । पुनः विचारण न्यायालय द्वारा पति की दोषमुक्ति के विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई थी ।

अभियोजन को भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधिनियमन और दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के हाल के संशोधनों के साथ विधानमंडल द्वारा स्थापित रूझान को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए ।

न्यायमूर्ति पाठक, जो वह उस समय थे, न्यायालय के लिए **भगवंत सिंह** बनाम **पुलिस आयुक्त, दिल्ली** (1983) 3 एस.सी.सी. 344 में बोलते हुए ऐसी घटनाओं के तुरंत अन्वेषण के लिए विशेष मजिस्ट्रेट संबंधी तंत्र के सृजन, ऐसे मामलों की विशिष्ट बातों को ध्यान में रखते हुए दक्ष, अन्वेषणकारी तकनीकों और प्रक्रियाओं को अपनाने की आवश्यकता, अन्वेषण के साथ उसके प्रारंभ से ही पर्याप्त रैंक और प्रास्थिति कि महिला पुलिस अधिकारी को जोड़ने, और कोरोनर अधिनियम, 1871 के लागू होने का अन्य शहरों पर उनके अलावा जहां वह पहले से ही प्रवृत्त है, विस्तार करने के बारे में महत्वपूर्ण सुझाव दिए थे । यह सरकार के लिए है कि वह इन सुझावों को कार्यान्वित करे ।

3.8 समान तथ्यों से उद्भूत होने वाले विभिन्न अपराध :

3.8.1 भारतीय दंड संहिता, 1860 की विभिन्न धाराओं के अधीन अपराध सुभिन्न अपराध हैं । किसी व्यक्ति को, यदि आरोपित धाराओं की शर्तों का किसी प्रस्तुत मामले में समाधान हो जाता है तो, एक धारा से अधिक के अधीन सिद्धदोष ठहराया जा सकता है । इस प्रकार **रविन्द्र त्रिम्बक चौथमल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (1996) 4 एस.सी.सी. 148 में, एक दहेज-मृत्यु के मामले में अपराधी पति को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपनी पत्नी विजया की हत्या करने के लिए विचारण न्यालय द्वारा आरोपित किया गया था और सिद्धदोष ठहराया गया था । वह भारतीय दंड संहिता की धारा 201/34, धारा 498-क/34 और धारा 304-ख/34 के अधीन भी दोषी पाया गया था । उसे धारा 304-ख के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए मृत्यु

दंडादेश ; धारा 201/34 के अधीन अपराध के लिए सात वर्ष का कठोर कारावास ; धारा 498-क/34 के लिए तीन वर्ष का कठोर कारावास और 500/- रु0 का जुर्माना और व्यतिक्रम में तीन मास का कठोर कारावास तथा धारा 304-ख/34 के लिए सात वर्ष का कठोर कारावास, जो विधि के अधीन विहित न्यूनतम दंडादेश था, दिया गया था । उच्च न्यायालय में अपील किए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख/34 के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त कर दिया गया था । किंतु अन्य धाराओं के अधीन दोषसिद्ध की, जब मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया, पुष्टि करते हुए निम्नलिखित संप्रेक्षण किए गए थे जो विचारणाधीन मुद्दे पर तात्विक प्रभाव रखता है । उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार कहा :-

> "9. वर्तमान इस प्रकार निम्नतम नियम विरुद्ध कार्य था जैसा कि प्रारंभ के पैरा में हमारे द्वारा बताया गया है । हेतु अपीलार्थी के लिए दूसरी लड़की पाना था जिससे उसे पिता के लालच को संतुष्ट करने के लिए दहेज मिल सके । दहेज-मृत्यु खून-खौलाने वाली हैं क्योंकि मानवीय खून, व्यथाजनक लालच, नग्न लालच, ऐसे लालच की, जिसकी कोई सीमा नहीं है, संतुष्टि करने के लिए बहाया जाता है । तथापि प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में चरम सीमा वाली अनुशास्ति उचित थी ?
>
> "10. हमने इस प्रश्न पर पर्याप्त रूप से विचार किया है और हम इस मामले को उस प्रवर्ग में रखने में समर्थ नहीं हुए हैं जिसे "विरलों में से विरलतम" प्रकार का माना जा सके । यह इसलिए है क्योंकि दहेज-मृत्यु, अब हत्या की उन किस्मों से संबंधित नहीं रही है । दहेज-मृत्यु की बढ़ती हुई संख्या पर इसका प्रभाव पड़ेगा । उठते हुए ग्राफ को रोकने के लिए हमने, एक समय पर दंडादेश को बनाए रखने के बारे में सोचा था किंतु हम मृत्यु अनुशास्ति के भयपरतिकारी प्रभाव के बारे में संदेह रखते हैं । अतः हम अपने आप को मृत्यु दंडादेश बनाए रखने से रोकते हैं यद्यपि हमने हमारे सामने प्रस्तुत अपीलार्थी के समान घृणास्पद चरित्र का वांछित

रूप से विनाश चाहा होता । इसलिए हम मृत्यु दंडादेश का कठोर आजीवन कारावास में लघुकरण करते हैं ।''

3.8.2 धारा 201/34 के अधीन दोषसिद्धि को बनाए रखा गया था किंतु दंडादेश को क्रमवर्ती रूप से चलाने के लिए और समवर्ती रूप से नहीं निदेशित किया गया था जिससे कि न्यायालय का मृत शरीर को गायब करना कारित करने के लिए अपनाई गई घिनौनी, विभत्स और भयानक उक्ति का कठोर अननुमोदन दर्शित किया जा सके । अन्य धाराओं अर्थात् धारा 316, धारा 498-क/34 के अधीन दोषसिद्धियों को अपास्त कर दिया गया था ।

3.8.3 दूसरी तरफ केवल इसलिए कि अपराधी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्त किया गया था, दहेज-मृत्यु के बारे में उपधारणा स्वतः विखंडित नहीं हो जाती । (देखिए **आलमगीर सानी** बनाम **असम राज्य,** ए.आई.आर. 203 एस.सी. 2108) आगे चाहे धारा 304-ख के अधीन अभियोगीकरण असफल होता है, किसी व्यक्ति को धारा 498-क के अधीन इस बात को होते हुए भी कि क्रूरता दोनों धाराओं के लिए सामान्य रूप से अनिवार्य है, दोषसिद्ध ठहराया जा सकता है । किसी व्यक्ति को धारा 306 के अधीन भी दोषसिद्ध ठहराया जा सकता है यद्यपि धारा 304-ख के अधीन अभियोगीकरण असफल होता है । (देखिए **हीरालाल और अन्य** बनाम **राज्य,** (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र सरकार), दिल्ली ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2865,**कालिया पेरूमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य,** ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 3828 भी देखें ।)

3.8.4 इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि हत्या का अपराध वही नहीं है जो धारा 304-ख के अधीन दहेज मृत्यु का अपराध है, यद्यपि वधू की मृत्यु दोनों अपराधों में सामान्य तत्व हो सकती है । पति और पत्नी की मृत्यु के बीच सीधे संबंध का अभाव हत्या के अपराध से दहेज-मृत्यु के अपराध को सुभिन्न करता है । ये एक कठोर न्यून करने वाला कारक है जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **हेमचंद्र** बनाम **हरियाणा राज्य** (1994) 6 एस.सी.सी. 727 के मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । यह देखना सुसंगत हो सकता है कि इस

मामले में, उच्चतम न्यायालय इस सीमा तक गया है कि धारा 304-ख के अधीन आजीवन कारावास तक दहेज-मृत्यु के सभी मामलों में नैमित्तिक रूप में नहीं दिया जाना चाहिए किंतु केवल विरलतम मामलों में दिया जाना चाहिए । धारा 304-ख को उद्धृत करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने कहा :-

> ''विचारार्थ मुद्दा यह है कि क्या आजीवन कारावास के चरम सीमा के दंड का वर्तमान मामले में समर्थन किया जाता है । भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख के पढ़ने से यह दर्शित होगा कि जब कोई प्रश्न उठता है कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज-मृत्यु का अपराध किया है तब वह सब जो आवश्यक है यह है कि यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उसकी अप्राकृतिक मृत्यु के शीघ्र पूर्व जो विवाह के सात वर्षों के भीतर हुई, मृतक के ऊपर ऐसे व्यक्ति द्वारा दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था । यदि ऐसा दर्शित किया जाता है तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है । अतः यह देखा जा सकता है कि इस तथ्य का ध्यान रखे बिना कि क्या ऐसा व्यक्ति मृतक की मृत्यु के लिए सीधे उत्तरदायी है या नहीं उपधारणा के आधार पर उसके बारे में यह समझा जाता है कि उसने दहेज मृत्यु कारित की है, यदि ऐसी क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था और यह कि यदि अप्राकृतिक मृत्यु विवाह की तारीख से सात वर्ष के भीतर घटित हुई है । इसी प्रकार दहेज-मृत्यु के बारे में साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ख के अधीन एक उपधारणा है । यह अधिकथित करती है कि न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि उस व्यक्ति ने जिसने मृतक पत्नी के साथ उसकी मृत्यु के पूर्व क्रूरता की थी, दहेज-मृत्यु कारित की है, यदि यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के पूर्व ऐसी स्त्री पर दहेज की किसी मांग के संबंध में अभियुक्त द्वारा क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था । व्यावहारिक रूप से यह उपधारणा है जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख में भी निगमित किया गया है । अतः यह देखा जा सकता है कि इस तथ्य के होते हुए भी कि चाहे

अपराधी का मृत्यु के साथ कोई सीधा संबंध है या नहीं, उसके बारे में यह उपधारणा की जाएगी कि उसने दहेज मृत्यु की है परंतु यह तब जबकि ऊपर वर्णित अन्य अपेक्षाओं का समाधान होता हो । हाल के मामले में निःसंदेह अभियोजन ने यह साबित किया है कि मृतक अप्राकृतिक मृत्यु हुई थी अर्थात् उसे गला घोंटकर मारा गया था किंतु अपराधी को इससे जोड़ने वाला कोई सीधा साक्ष्य नहीं है । इस संदर्भ में यह देखना भी महत्वपूर्ण है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन कोई आरोप नहीं है ..... अतः अधिकांशतः यह कहा जा सकता है कि अभियोजन ने साबित किया है कि यह अप्राकृतिक मृत्यु थी जिस मामले में भी धारा 304-ख आकर्षित होगी किंतु इस पहलू को निश्चित रूप से अपराधी को दिए जाने वाले दंडादेश का संतुलन करने में ध्यान में रखना होगा ..... जैसा ऊपर वर्णित है, भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख केवल उपधारणा को जन्म देती है और अभिकथित करती है कि न्यूनतम दंडादेश सात वर्ष होना चाहिए किंतु उसका विस्तार आजीवन कारावास तक किया जा सकता है । अतः आजीवन कारावास के चरम सीमा का दंड देना विरले मामलों में, न कि प्रत्येक मामले में, होना चाहिए ।''

3.8.5 पूर्वोक्त विश्लेषण से निम्नलिखित प्रतिपादनाएं सामने आती हैं :-

(1) भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख में दहेज-मृत्यु का अपराध ऐसे अपराधों के प्रवर्गों में नहीं आता जिस के लिए दंड संहिता में मृत्यु अनुशास्ति का उपबंध किया गया है ।

(2) दहेज-मृत्यु हत्या के अपराध से भिन्न है । किसी वधू की मृत्यु अपराधों के दोनों प्रवर्गों अर्थात् हत्या और दहेज-मृत्यु के अधीन आ सकती है, जिस दशा में, मृत्यु दंडादेश प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए समुचित मामलों में हत्या का अपराध करने के लिए दिया जा सकता है ।

(3) दहेज-मृत्यु प्रत्येक मामले में अभियुक्त और उसके उपधारणात्मक चरित्र के कारण अपराध के बीच सीधा संबंध अंतर्वलित नहीं करती । जहां प्रस्तुत मामले में साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शित करता है कि अपराधी ने जानबूझकर मानव जीवन को खतरे में रखा था तो वह मामला धारा 302 के प्रति निर्देश से धारा 300 के उपबंधों को आकर्षित करेगा और वह केवल दहेज मृत्यु का मामला नहीं रह जाएगा ।

पूर्वोक्त की दृष्टि से मृत्यु अनुशास्ति का उपबंध करने के लिए धारा 304-ख का संशोधन करने हेतु कोई औचित्य नहीं है । ऐसी शास्ति आनुपातिकता के सिद्धांत के अनुरूप भी नहीं होगी ।

3.8.6 आयोग में विचार-विमर्श के दौरान, सुझाव प्राप्त हुए थे कि यदि उस धारा का मृत्यु दंडादेश का उपबंध करने के लिए संशोधन नहीं किया जा रहा है तो उस धारा के अधीन कम से कम सात वर्ष के न्यूनतम कारावास को बढ़ाकर 10 वर्ष कर दिया जाना चाहिए । यह राष्ट्रीय महिला आयोग की भी एक सिफारिश है और इसके अतिरिक्त इसे इस अध्याय में पहले निर्दिष्ट किया गया है । इसके लिए दिया गया कारण यह है कि दहेज-मृत्यु के पीड़ित को साधारणतया मारे जाने के पूर्व लंबा और लगातार जुल्म सहना पड़ता है । इस सिफारिश में हमें अधिक सार मालूम होता है और हम इससे सहमत हैं । राष्ट्रीय महिला आयोग की सिफारिश पहले ही सरकार के समक्ष विचारार्थ है । उक्त सिफारिश के बारे में समुचित दृष्टिकोण अपनाना सरकार का कार्य है ।

3.9 दंड के निर्धारण में आनुपातिकता का सिद्धांत :

3.9.1 प्रत्येक किस्म के आपराधिक आचरण की सदोषता के अनुसार दायित्व का निर्धारण करने में आनुपातिकता का सिद्धांत उच्चतम न्यायालय द्वारा **लहना सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** (2002) 3 एस.सी.सी. 76 के मामले में उचित रूप से विस्तार से बताया गया है । यह समीचीन होगा कि हम इस विषय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के प्रति निर्देश करें जो यथा निम्नलिखित हैं :-

''दंड विधि साधारणतया प्रत्येक किस्म के आपराधिक आचरण की सदोषता के अनुसार दायित्व का निर्धारण करने में आनुपातिकता के सिद्धांत का अनुपालन करती है । यह साधारणतया न्यायाधीश को प्रत्येक मामले में दंडादेश पर पहुंचने के लिए, उपधारणात्मक रूप से ऐसे दंडादेशों की अनुज्ञा देने के लिए, जो सदोषता के अधिक युक्तिपूर्ण विवेचन को, जिसे प्रत्येक मामले के विशेष तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, प्रतिबिम्बित करते हैं, कुछ महत्वपूर्ण विवेक का उपयोग करने की अनुज्ञा देती है । दंड हमेशा अपराध के योग्य होना चाहिए ; किंतु व्यावहार में दंडादेश का अवधारण विस्तृत रूप से अन्य विवेचनाओं द्वारा किया जाता है । कभी-कभी यह अपराध करने वाले की सुधारशील आवश्यकताएं होती हैं जो दंडादेश को न्यायाचित ठहराने के लिए दर्शित की जाती हैं, कभी-कभी उसे परिचालन से बाहर रखने की वांछनीयता होती है और कभी उसके अपराध के दुःखद परिणाम भी होते हैं । अनिवार्य रूप से ये विचारण दंड के आधार के रूप में न्यायोचित मरुभूमि से विचलन कारित करते हैं और प्रत्यक्ष अन्याय के मामलों का सृजन करते हैं जो गंभीर और व्यापक स्थिति है । अपराध और दंड के बीच आनुपातिकता का सिद्धांत न्यायोचित मरुभूमि का सिद्धांत है जो ऐसे प्रत्येक आपराधिक दंडादेश की, जो न्यायोचित है, आधारशीला के रूप में कार्य करता है । दांडिक न्याय के सिद्धांत के रूप में यह उस सिद्धांत से कि केवल दोषी को ही दंडित किया जाना चाहिए, कठिनता से कम परिचित है या कम महत्वपूर्ण है, यह अपेक्षा कि, दंड अनानुपातिक रूप से बड़ा न हो, जो न्यायोचित मरुभूमि की एक संसर्गी है, उसी सिद्धांत से अधिप्रेरित है जो किसी निर्दोष को उससे अधिक किसी दंड के लिए जो आपराधिक आचरण के योग्य दंड है, अनुज्ञात नहीं करता है ।

कोई सिद्धदोषी जीवन और मृत्यु के बीच परिभ्रमण करता है जब अपराध की गंभीरता और पर्याप्त दंडादेश दिए जाने का प्रश्न विचारण के लिए सामने आता है । मानवता का प्राकृतिक स्थिति से सभ्य समाज में परिवर्तन हो गया है और

अब यह बहुसंख्या की भौतिक राय नहीं है जो किसी नागरिक की स्वतंत्रता उसे सिद्धदोष ठहराकर, ले लेती है और उससे कारावास का दंडादेश भुगतवाती है । विधि के शासन से विवाहित किसी पद्धति में विचारण के पश्चात् सिद्धदोष का अनुसरण करने वाले दंड का दिया जाना किसी न्यायालय के कक्ष में शांति से किए गए विचार-विमर्श का परिणाम होता है, जो पक्षकारों को पर्याप्त सुनवाई का अवसर दिए जाने, अपराधी के विरुद्ध अभियोगों को लगाए जाने, अभियोग लगाए गए व्यक्ति को उसकी निर्दोषिता स्थापित करके अभियोगों के विरुद्ध उत्तर देने का अवसर दिए जाने के पश्चात, होता है । यह शांति से किए गए विचार-विमर्श का और तथ्यों से अवगत व्यक्ति अर्थात् न्यायाधीश द्वारा सामग्री की परीक्षा करने के पश्चात् का, जो वाद के अवधारण का मार्ग प्रशस्त करती है, परिणाम होता है । अपराध और दंड के बीच अनुपात लक्ष्य है जिसकी सिद्धांततः आशा की जाती है और विपथगामी धारणाओं के होते हुए भी यह दंडादेश के अवधारण में गहरा प्रभाव रखता है । सभी गंभीर अपराधों को समान कठोरता से दंड देने की पद्धति अब सभ्य समाजों में अज्ञात है किंतु आनुपातिकता के सिद्धांत से ऐसा महत्वपूर्ण विचलन केवल हाल के समय में विधि से अदृश्य हो गया है । आज भी एक एकल गंभीर उल्लंघन के बारे में एक समान कठोर अध्युपायों की मांग की जाती है । किसी गंभीर अपराध के लिए महत्तम कठोरता की शास्ति से कम कुछ भी अन्यथा सहनशीलता का अध्युपाय समझा जाता है, जो असमर्थित और विवेकहीन है । किंतु, वास्तव में उन विचारणों से, जो दंड को, जब वह अपराध के अनुपात से बाहर है, अन्यायपूर्ण बनाते हैं, पूर्णतया पृथक एक समान रूप से अननुपाती दंड के कुछ बहुत ही अवांछनीय व्यावहारिक परिणाम होते हैं ।''

3.9.2 एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू भी है जिसे विचारणार्थी विषय के बारे में कार्य करते हुए ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है अर्थात् दहेज-मृत्यु की घटना द्वारा जनित भावनात्मक और आवेगात्मक भावनाओं को अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर रखने की आवश्यकता उन दोनों समयों पर जब किसी अपराध के लिए दंडादेश विहित किया जाता है और जब किसी

मामले में कोई दंडादेश दिया जाता है । यह उपयोगी होगा कि हम **राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम लक्ष्मण कुमार,** ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 250 के मामले में किए गए निम्नलिखित संप्रेक्षण के प्रति निर्देश करें :-

> ''हम एक या सभी के द्वारा निन्दा किए जाने और यदि योग्य साबित हो जाए तो गंभीरतम दंडादेश दिए जाने के लिए पत्नी को जलाने वाले अपराधों के मामलों में कुछ महिला संगठनों द्वारा प्रदर्शित चिंता की प्रशंसा करते हैं । दहेज की बुराई संपूर्ण रूप से समाज के लिए समान चिंता का विषय है और इसे देने वाले तथा लेने वाले दोनों को घृणात्मक रूप से देखा जाना चाहिए ।
>
> न्यायालय भावनात्मक और आवेगात्मक भावनाओं को न्यायिक प्राख्यापनों के सामने आने की अनुज्ञा नहीं दे सकते । एक बार यदि भावनात्मक और आवेगात्मक भावनाओं को न्यायाधीश के न्यायिक मस्तिष्क में प्रवेश की अनुज्ञा दे दी जाती है तो न्यायाधीश साक्ष्य को विद्वेष से देखेगा और उस मामले में निष्कर्ष भी विद्वेषपूर्ण हो सकता है और जिसका परिणाम कुछ मामलों में बड़ा अन्याय हो सकता है । ऐसे मामलों को कठोर रूप से साक्ष्य पर, चाहे अपराध कितना भी क्रूर या डराने वाला हो,'' विनिश्चित किया जाना होगा । निर्दोष व्यक्ति को सिद्धदोष ठहराए जाने के सभी संभव अवसरों को खारिज करना होगा । न्यायालय में किसी अपराधी के विरुद्ध द्वेषपूर्ण वातावरण नहीं होना चाहिए । द्वेषपूर्ण वातावरण से अविद्वेषपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने में और साथ ही विनिश्चय करने में निश्चित रूप से बाधा पड़ेगी । इससे सभी मूल्यों पर बचना होगा ।''

3.9.3 न्यायालय ने आगे निम्नलिखित रूप में कहा :-

> तथापि हम इस तथ्य से विच्छुब्ध हैं कि न्यायालय ने समाचार मीडिया के द्वारा किए गए प्रचार की ओर ध्यान दिया और जनता के मस्तिष्क में घबराहट के अपने भय को दर्शित किया । यह प्रत्येक न्यायालय की बाध्यता है कि वह सत्य की

खोज करे और एक बार जब सत्य की खोज हो जाती है तो विधि के अनुसार कार्य करे । सत्य के लिए उस खोज में प्रकट रूप से न्यायालय को विधि द्वारा स्थापित सीमाओं के भीतर कृत्य करना होता है और उसके सामने रखे गए साक्ष्य पर कार्य करना होता है । जब न्यायालय न्याय निर्णयन की प्रक्रिया में व्यस्त है तब न्ययालय कक्ष के बाहर क्या होता है यह असंगत है और जब तक कि समाचार मीडिया के माध्यम से या जनता के मस्तिष्क में घबराहट के माध्यम से न्यायालय कक्ष के बाहर उत्पन्न गर्मी से न्यायालय कक्ष के अंदर की कार्यवाहियों को पृथक् रखने के लिए उचित उपधान की व्यवस्था नहीं हो जाती है, न्याय के हेतु को नुकसान उठाना होगा । मानवता का प्राकृतिक स्थिति से एक सभ्य समाज की ओर अंतरण हो गया है और अब यह मुकदमा लड़ने वाले व्यक्ति की शारीरिक शक्ति या शासक की शक्ति और न उस बहुसंख्या की राय है, जो किसी नागरिक की स्वतंत्रता उसे सिद्धदोष ठहराकर ले लेती है और उसे कारावास का दंडादेश भुगतना पड़ता है । विधि के शासन से विवाहित किसी पद्धति में किसी विचारण में सिद्धदोष का अनुसरण करने वाले दंड का दिया जाना न्यायालय कक्ष में शांतिपूर्ण विचार-विमर्श का परिणाम होता है जो पक्षकारों को पर्याप्त सुनवाई का अवसर दिए जाने, अपराधी के विरुद्ध अभियोग लगाए जाने, अभियोजक को आरोप का समर्थन करने का अवसर दिए जाने तथा अभियुक्त को अपनी निर्दोषिता स्थापित करके अभियोगों के विरुद्ध उत्तर देने का समान अवसर दिए जाने के पश्चात् निकलता है । यह शांतिपूर्ण विचार-विमर्श का और तथ्यों से अवगत व्यक्ति अर्थात् न्यायाधीश के द्वारा सामग्री की परीक्षा करने के पश्चात् का परिणाम होता है जो वाद में अवधारण का आधार होता है । यदि उपधान खो जाता है और न्यायालय कक्ष को उसके बाहर जनित ऊष्मा के साथ प्रकम्पित होने की अनुज्ञा दे दी जाती है तो न्याय निर्णयन प्रक्रिया को नुकसान उठाना होता है और सत्य के लिए खोज का गला घुट जाता है ।

3.9.4 उपरोक्त दृष्टिकोण किसी अपराधी के दोष का अवधारण करने में किसी न्यायालय के समक्ष न्यायिक कार्यवाहियों का सहोदर हो सकता है । ऐसा किसी प्रस्तुत अपराध के लिए विधि में किसी दंडादेश के निर्धारण से संबंधित विधायी कार्यवाहियों के संबंध में नहीं है । विधानमंडल को लोक भावनाओं और मांगों के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । विधियां उस समाज की, जिसमें वे प्रवर्तित होती हैं, आवश्यकताओं की संतुष्टि करने के लिए बनाई जाती हैं । स्वीकार्य रूप से दहेज-मृत्यु की संख्या और रीति को ध्यान में रखते हुए इस सामाजिक बुराई को प्रभावी रूप से कम करने के लिए कठोर विधिक उपायों के लिए व्यापक सावर्जनिक मांग की जा रही है । किंतु इसके साथ ही दंडशास्त्र के मुख्य सिद्धांतों का विशेष रूप से उनका जो दंड देने से संबंधित है, सम्यक रूप से पालन करना होगा । यह महत्वपूर्ण है कि विधिक अनुशास्तियां अवश्य ही समुचित, व्यावहारिक और प्रभावी होनी चाहिए । दंडादेश उससे जो आवश्यक है अवश्य ही न तो बहुत कम या बहुत कठोर और अधिक होना चाहिए । दोनों ही प्रतिउत्पादक होंगे । दहेज-मृत्यु के लिए दंड का निर्धारण करने में तार्किक संतुलन बनाना होगा ।

3.9.5 इस आयोग द्वारा अपनी 91वीं रिपोर्ट में ध्वनित सावधानी के शब्द को पुनः दोहराना समीचीन होगा ;

> ''प्रायिक 'दहेज-मृत्यु' की दी गई इन सभी परिस्थितियों में यह मानना होगा कि वहां भी जहां किसी विशिष्ट मामले में, नैतिक निश्चितता है कि मृत्यु हत्या का परिणाम है, परिस्थितियां सत्य की शीघ्र या सरल खोज के लिए विरोधी होंगी । दंडात्मक अध्युपाय जैसे, जिनका विद्यमान विधि की परिधि के भीतर अनुसरण किया जा सकता है - अपनी औपचारिक अंतर्वस्तुत में पर्याप्त हो सकते हैं । किंतु उनका सफल प्रवर्तन कठिनाई का विषय है । इसीलिए दंडात्मक अध्युपायों की समुचित निवारक अध्युपायों द्वारा अनुपूर्ति किए जाने की आवश्यकता है । यह रिपोर्ट इस बारे में कि इस विषय में क्या किया जा सकता है कुछ विनम्र सुझाव देना चाहती है । यह संभव है कि यहां सिफारिश किए गए अध्युपायों को कुछ व्यक्तियों द्वारा बहुत हलका या दूसरे व्यक्तियों

द्वारा आमूल परिवर्तनवादी के रूप में माना जाएगा । किंतु यह आशा की जाती है कि यह विचार-विमर्श इस विषय पर विचारधारा को कम से कम एक नया आधार देगा । कुछ प्रभावी निवारक अध्युपायों की, चाहे उनकी कुछ भी अंतर्वस्तु हो, और झुकाव, तुरंत आवश्यकता है । यदि यह शीघ्र नहीं किया जाता है तो इस बात का गंभीर खतरा है कि वधू को जलाने वाली समस्या नियंत्रण से बाहर हो जाएगी और एक ऐसी स्थिति आएगी जब दोनों संभावनाओं में से एक वास्तविक बन जाएगी । या तो ठोस हल निकालने के लिए प्रयास करने के लिए कोई उत्साह नहीं रह जाएगा अथवा अंगीकृत हल ग्रहण कर लिए जाएंगे जो समस्या से अधिक बुरे हो सकते हैं । इस आयोग का यह गंभीर प्रयास होगा कि दोनों संभावनाओं में से कोई भी कार्यान्वित न हो ।

3.9.6 यह दृष्टि में रखते हुए हमारा यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि अपराध के उपधारणात्मक स्वरूप को, मृत्यु और अपराधी के बीच सीधे संबंध की अनुपस्थिति और सदोष आचरण की गंभीरता और साथ ही प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख में परिभाषित रूप में दहेज-मृत्यु के अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश का निर्धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

3.9.7 इसके लिए कारण यह नहीं है कि मृत्यु दंड (हत्या के मामले में) भारतीय दंड संहिता की धारा 302 में पहले ही विहित किया जा चुका है । धारा 304-ख (दहेज-मृत्यु) के अधीन किए गए अपराध के लिए मृत्यु दंड विहित करने के लिए कोई आवश्यकता नहीं है । भारतीय दंड संहिता की धारा 302 (हत्या), धारा 304-ख (दहेज-मृत्यु) और 306 (आत्महत्या का दुष्प्रेरण) के बीच सुभिन्नता है । यदि धारा 304-ख के अधीन कोई आरोप विरचित किया जाता है किंतु साक्ष्य के अभिलिखित किए जाने और उसकी विवेचना किए जाने के पश्चात्, मामला धारा 302 के अधीन मामला साबित होता है, तो आरोप में परिवर्तन कियाजा सकता है और अपराधी को धारा 302 के अधीन बहुत अच्छी तरह दंडित किया जा

सकता है और यदि न्यायालय यह पाता है कि धारा 302 के अधीन मामला विरले मामलों में से विरलतम है, तो अपराधी को बहुत अच्छी तरह मृत्यु दंड से दंडित किया जा सकता है ।

3.9.8 **पानाकांति संपथराव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य,** (2006) 9 एस.सी.सी. 658 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304-ख और धारा 398-क के अधीन दोषसिद्धि को धारा 302 में परिवर्तित करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि कर दी है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि "इस बात के बहुत साक्ष्य है, जो दर्शित करता है कि अपीलार्थी ने मृतक को दहेज के लिए तंग किया था और उसके साथ बुरा बर्ताव किया था और परिस्थितियां संकेत करती हैं कि उसने मृतक की मृत्यु कारित की है । अतः हम अपीलार्थी (क1) को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी पाते हैं ।"

3.10 सिफारिश

पूर्वोक्त की दृष्टि से, हम दहेज मृत्यु की दशा में अधिकतम दंड के रूप में मृत्यु दंडादेश का उपबंध करने के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304-ख के संशोधन की सिफारिश नहीं करते हैं ।

3.11 समावर्तन टिप्पण

विदा लेने से पूर्व, हम उच्चतम न्यायालय द्वारा **के. प्रेमा एस. राव** बनाम **यदला श्रीनिवाश राव,** ए.आई.आर. 2003 एस.सी 11 में, पृष्ठ 11 पर (पैरा 27) के मामले में अपने निर्णय में प्रतिपादित मत को पुनः दोहराना पसंद करेंगे जो इस आशय का है कि "विधानमंडल ने दंड संहिता और साक्ष्य अधिनियम में संशोधन करके विवाहित महिलाओं के विरुद्ध दंड देने वाले अपराधों के संबंध में कार्रवाई करने के लिए दांडिक विधि को अधिक कठोर बना दिया है । ऐसी कठोर विधियों का अपराधियों पर केवल तभी भयपरतिकारी प्रभाव होगा यदि वे विधायी आशय की पूर्ति करने के लिए न्यायालयों द्वारा कठोर रूप से

कार्यान्वित की जाती है ।'' हम यह जोड़ सकते हैं कि प्रवर्तन अभिकरणों को भी दहेज-मृत्यु की घटनाओं से उत्पन्न होने वाली स्थिति की आवश्यकताओं के प्रति अधिक संवेदनशील और उत्तरदायी होना होगा । दहेज-मृत्यु समाज में विद्यमान सामाजिक-आर्थिक विभीषिका का प्रकटन है । इस पर हमें विभिन्न स्तरों पर और न कि केवल विधिक प्रतितोष के स्तर पर ध्यान केंद्रित करना होगा जिससे कि दहेज-मृत्यु की विभीषिका को रोका जा सके । तथापि हम इस सीमा में प्रवेश करने से अपने आप को रोकते हैं क्योंकि यह कठोर रूप से विधिक क्षेत्र से संबंधित नहीं है ।

(डा. न्यायमूर्ति ए. आर. लक्ष्मणन्)

अध्यक्ष

(प्रो. (डा.) ताहिर महमूद)

सदस्य

(डा. डी. पी. शर्मा)

सदस्य-सचिव